तकनीकी बुलेटिन : सी.एस.एस.आर.आई./करनाल/2014/01

संरक्षण खेती के सिद्धांतों पर आधारित खाद्यान्न सुरक्षा की एक सामरिक रूपरेखा

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
सीरियल सिस्टम इनिशियेटिव फॉर साऊथ एशिया
(अंतर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ अनुसंधान केन्द्र)
करनाल–132 001 (हरियाणा)

भाकृअनुप ICAR CIMMYT CSISA IRRI USAID FROM THE AMERICAN PEOPLE BILL & MELINDA GATES foundation

पी.सी शर्मा, एच.एस. जाट, एन.पी.एस. यदुवंशी, डी.के. शर्मा, गुरबचन सिंह, एम.के. गठाला, विरेन्द्र कुमार, यशपाल सहरावत, एम.एल. जाट, जे.के. लड्डा एवं एन्ड्रयू मैक्डोनाल्ड, 2014। संरक्षण खेती के सिद्धांतो पर आधारित खाद्यान्न सुरक्षा की एक सामरिक रुपरेखा, तकनीकी बुलेटिन : सी. एस. एस. आर. आई. /करनाल/2014/01, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल पृष्ठ–32

प्रथम संस्करण – मार्च 2014

प्रकाशक : निदेशक, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
करनाल – 132 001 (हरियाणा) भारत
दूरभाष : +91–184–2290501
फैक्स : +91–184–2290480
ई–मेलः director@cssri.ernet.in
वेबसाइट : www.cssri.org

सहयोग : मैनपाल सिंह, सीनियर रिसर्च फैलो, सीसा प्रोजेक्ट
राकेश चौहान, प्रक्षेत्र सहायक, सीसा प्रोजेक्ट
कुलदीप मलिक, प्रक्षेत्र सहायक, सीसा प्रोजेक्ट
अंकिता परवाल, सीनियर रिसर्च फैलो, सीसा प्रोजेक्ट

मुद्रण : इन्टैक प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स
343 प्रथम तल, मुगल कॅनाल मार्किट
करनाल–132 001 (हरियाणा)
दूरभाष : +91–184–4043541, 3292951
ई–मेलः jobs.ipp@gmail.com

संरक्षण खेती के सिद्धांतों पर आधारित खाद्यान्न सुरक्षा की एक सामरिक रुपरेखा

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद सदस्य

पी.सी शर्मा, एच.एस. जाट, एन.पी.एस. यदुवंशी, डी.के. शर्मा एवं गुरबचन सिंह

अंतर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान पर परामर्श समूह सदस्य

एम.के. गठाला, विरेन्द्र कुमार, यशपाल सहरावत, एम.एल. जाट, जे.के. लड्डा एवं एन्ड्रयू मैक्डोनाल्ड

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)

सीरियल सिस्टम इनिशियेटिव फॉर साऊथ एशिया

(अंतर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ अनुसंधान केन्द्र)

करनाल–132 001 (हरियाणा)

CSSRI

Haryana Farmer's Commission
Government of Haryana
Anaj Mandi Sector-20
Panchkula-134116
Camp Office: Kisan Bhawan, Khadsa
Mandi, Gurgaon 122001
Tel: 0124-2300784, 0172-2551664, 2551764
Fax: 0172-2551864 Mob No. 91-9810191486
E-mail: chairmanhka-hry@nic.in:
raj.paroda@gmail.com

हरियाणा किसान आयोग
हरियाणा सरकार
अनाज मण्डी सैक्टर–20
पंचकूला–134116
कैम्प कार्यालयः किसान भवन,
खांडसा मण्डी, गुडगांव–122001

डॉ. आर.एस. परोदा
अध्यक्ष
Dr. R.S. Paroda
Chairman

आमुख

हमारे भारत वर्ष में जनसंख्या (मानव/पशु) को देखते हुये संसाधनों की बहुत कमी है। हमारे पास विश्व का 4.2 प्रतिशत मीठा पानी एवं 2.3 प्रतिशत भूमि है जबकि हम विश्व की 17.46 प्रतिशत (121 करोड़) मानव जनसंख्या एवं लगभग 15 प्रतिशत मवेशियों, 55 प्रतिशत भैंसों एवं 5 व 16 प्रतिशत भेड, बकरियों की जनसंख्या को आश्रय देते है। भविष्य में इस जनसंख्या को आसरा देने के लिए पारम्परिक खेती को छोडकर हमें कृषि के नये आयामों पर जोर देने की नितांत आवश्यकता है ताकि हमारे प्राकृतिक संसाधन सुरक्षित बने रहें। संरक्षण खेती एक वास्तविक टिकाऊ उत्पादन प्रणाली प्रदान करने की रूपरेखा है जो न केवल उच्च उत्पादन स्तर को बनाये रखती है बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ जैव विविधता, मृदा जैविकता को बढ़ाती है। संरक्षण खेती से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता की दशाओं में आशातीत सुधार होता है व कार्बनिक पदार्थ का स्थिरिकरण होने से उसका संचय एवं उपलब्धता बढ़ जाती है। पारम्परिक खेती में अधिक समय एवं परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है जबकि संरक्षण खेती करने से किसान 25–30 प्रतिशत तक समय, परिश्रम व उत्पादन लागत की बचत कर सकते हैं। साथ ही साथ धान–गेहूँ फसल प्रणाली में धान के बाद गेहूँ की फसल को 10–15 दिन जल्दी लगाया जा सकता है। संरक्षण खेती में फसल उत्पादन का स्तर आधुनिक/गहन खेती के समतुल्य होने के साथ–साथ एक स्थायित्व भी प्रदान करता है।

मौजूदा कृषि प्रणालीयों में उभरती चुनौतियों एवं खाद्यान्नों की बढ़ती मांग के मद्धेनजर कृषि प्रणालीयों में विविधिकरण को अहम भूमिका अदा करनी होगी। कृषि के सतत सघनीकरण को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न विकल्पों जैसे संरक्षित खेती आधारित फसल प्रबंधन, दलहनी फसलों को रिले एवं अंतःवर्तीय फसल के रूप में शामिल करने, समंवित कृषि प्रणाली (*मल्टिइन्टरप्राइज एग्रीकल्चर*) अपनाने आदि तकनिकियों पर प्रचार व प्रसार की नितांत आवश्यकता है ताकि सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों के प्राकृतिक संसाधनों को भविष्य की खाद्यान्न एवं आय सुरक्षा के लिए बचाकर सही रखा जा सके।

संरक्षण खेती से आने वाले समय में हमें जल, मृदा एवं पर्यावरण संसाधनों पर दीर्घकालीन सकारात्मक प्रभाव दिखने की आशा है। इसे अपनाकर मृदा अपरदन/क्षरण, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण आदि हानिकारक कुप्रभावों को कम करते हुऐ फसल उत्पादन लिया जा सकता है। इस संरक्षण खेती बुलेटिन का उद्देश्य ऐसे कृषि संरक्षण और बेहतर प्रबंधन तरीकों का आंकलन करना एवं समाधानों को तलाश करना है जो पारंपरिक अभ्यासों से उत्कृष्ट हो तथा उत्तर पश्चिमी भारत के वर्तमान तथा भविष्य चालकों (जैसे श्रम और पानी की कमी, खेती की बढ़ती लागत, मृदा की दशा में गिरावट, जलवायु परिवर्तन आदि) के भी अनुकूल हो। मैं इस बुलेटिन के लेखकों तथा केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल एवं अंतर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, मैक्सिको को इस अच्छे कार्य के लिए बधाई देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि ये बुलेटिन किसानों, कृषि प्रसारकों तथा नीति निर्धारकों के लिए काफी फायदेमंद होगी।

दिनांक : 4 मार्च, 2014
स्थान : गुड़गांव, हरियाणा

राजेन्द्र परोदा

(राजेन्द्र सिंह परोदा)

माकृअनुप
ICAR

डॉ. अलोक कुमार सिक्का
उप महानिदेशक (प्रा सं प्र)

Dr. Alok K. Sikka
Deputy Director General (NRM)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन-II, पूसा नई दिल्ली 110 012

INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI ANUSANDHAN BHAVAN-II, PUSA NEW DELHI - 110 012

Ph. : 91-11-25848364 (O), 24121571 (R)
Fax : 91-11-25848366
E-mail: aksikka@icar.org.in; aloksikka@yahoo.co.in

प्राक्कथन

सिंधु–गंगा के उत्तर–पश्चिमी मैदानी इलाकों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली के अन्तर्गत गेहूँ में जीरो–टिलेज को व्यापक रूप से अपनाया गया है जिससे गेहूँ की उत्पादकता एवं संसाधनों को प्रयोग करने की क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव देखे गए हैं। इसके विपरीत धान की फसल को अभी भी पारंपरिक विधि से लगाया जा रहा है। बढ़ती कृषि की लागत तथा श्रम और पानी की कमी को ध्यान में रखते हुऐ कद्दू करके धान लगाने तथा अवशेषों को जलाने से फसल पोषक तत्वों को हो रहे नुकसान से बचाने के लिए जीरो–टिलेज गेहूँ के साथ–साथ धान की सीधी बुवाई करने की जरूरत है तथा भविष्य में इसकी अपार संभावनाएं है। फसल अवशेषों को जलाने से ग्रीन हाउस गैसें जैसेः कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2), नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O), कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) आदि निकलती हैं जो पर्यावरण एवं मानव जीवन के लिए बहुत हानिकारक है। संरक्षण खेती में कार्बन को मृदा में अधिक समय के लिए संचित करके ग्रीन हाऊस गैस उत्सर्जन, वैश्विक तापमान में बढ़ोत्तरी, समुद्र तटों का विस्तार, ध्रुवों के किनारों का पिघलना इत्यादि जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों को एक सीमा तक कम किया जा सकता है।

भविष्य में संसाधन संरक्षण खेती को सिंचित क्षेत्रों की धान–गेहूँ फसल प्रणाली के अलावा वर्षा आधारित क्षेत्रों की अन्य अनाज आधारित प्रणालियों में भी अपनाना होगा ताकि हम इससे सभी प्रकार की पारिस्थितिकियों में भरपूर फायदा उठा सकें। सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में श्रम और पानी की कमी के चलते धान–गेहूँ फसल प्रणाली की जगह मक्का–गेहूँ फसल प्रणाली एक अच्छा संभावित विकल्प है। इसी तरह से फसल प्रणालियों में बेहतर संरक्षण प्रबंधन के तरीकों और अन्य फसलों के शामिल करने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति एवं उत्पादन क्षमता बनी रहती है तथा टिकाऊ उत्पादन मिलता है। पारम्परिक खेती की तुलना में संरक्षण खेती के अन्तर्गत 25–30 प्रतिशत तक समय, ईंधन व परिश्रम की बचत होती है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में पशुओं की आबादी अधिक होने के कारण खेत में फसल अवशेष रखना एक बड़ा जोखिम का काम है। हमारे पास चारा भी इतनी मात्रा में उपलब्ध नहीं है कि हम उनका पेट भर सकें। आने वाले समय में हमें इन क्षेत्रों में ओर शोध करने की जरूरत है। संरक्षण खेती प्रणाली अभी तक पूर्ण रूप से सिंधु–गंगा के मैदानों में भी पांव नहीं पसार पायी है क्योंकि किसान की मानसिकता अपने खेत को साफ–सुथरा रखने की होती है। हम किसान की मानसिकता को बदल कर ही इसको और आगे बढ़ा सकते हैं। मुझे हर्ष हो रहा है कि केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल एवं अंतर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, मैक्सिको के द्वारा संरक्षण खेती के अनुसंधान के आधार पर संरक्षण खेती की तकनीकियों को बड़ी सरल भाषा में इस बुलेटिन में समावेशित किया गया है जो किसानों एवं कृषि प्रसारकों के लिए काफी फायदेमंद होगी।

(अलोक कुमार सिक्का)

दिनांक : 04 मार्च, 2014
स्थान : नई दिल्ली

विषय सूची

1. प्रस्तावना
2. विश्व में संरक्षण खेती का दायरा
3. भारत में संरक्षण खेती का क्षेत्र
4. संरक्षण खेती के फायदे
5. भविष्य की खाद्यान्न आपूर्ति के लिए संरक्षण खेती आधारित योजना
6. संरक्षण खेती आधारित एक सामरिक परियोजना–सीसा
7. सीसा परियोजना के परिदृश्यों का विवरण
8. विभिन्न परिदृश्यों में फसलों का प्रबंधन
9. विभिन्न परिदृश्यों का आकलन
10. संरक्षण खेती के लिए महत्वपूर्ण प्रबंधन तकनीकियाँ
11. खाद्य सुरक्षा के लिए भविष्य की योजना–क्लाईमेट स्मार्ट खेती
12. महत्वपूर्ण सिफारिशें

लेखक

पी.सी. शर्मा : प्रधान वैज्ञानिक, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (भारत)

एच.एस. जाट : वरिष्ठ वैज्ञानिक/सीसा प्लेटफॉर्म समन्वयक, अंतर्राष्ट्रीय मक्का एव गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, करनाल (भारत)

एन.पी.एस. यदुवंशी : प्रधान वैज्ञानिक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली (भारत)

गुरबचन सिंह : अध्यक्ष, कृषि वैज्ञानिक चयन मण्डल, नई दिल्ली (भारत)

डी.के. शर्मा : निदेशक, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (भारत)

एम.के. गठाला : वैज्ञानिक, अंतर्राष्ट्रीय मक्का एव गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, ढाका (बांग्लादेश)

विरेन्द्र कुमार : शस्य वैज्ञानिक फसल प्रणाली व सीसा परियोजना उद्देश्य–2 के अधिनायक, अंतर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, पटना (भारत)

यशपाल सहरावत : वरिष्ठ वैज्ञानिक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली (भारत)

एम.एल. जाट : वरिष्ठ वैज्ञानिक/सिमिट–सीकेफस समन्वयक, दक्षिण एशिया, अंतर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेंहूँ अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली (भारत)

जे.के. लड्डा : भारतीय प्रतिनिधि, अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली (भारत)

एन्ड्रयू मैक्डोनाल्ड : सीसा परियोजना लीडर, अंतर्राष्ट्रीय मक्का एव गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, काठमाण्डू (नेपाल)

1. प्रस्तावना

विश्व में भूमि क्षरण एक गंभीर पर्यावरणीय समस्या है जो कि हमारे पारिस्थितिकी तंत्र एवं खाद्य सुरक्षा के लिए एक खतरा है। भूमि क्षरण से मृदा का कटाव, पोषक तत्वों का दोहन, मृदा में कार्बनिक पदार्थों की कमी, मिट्टी की उत्पादन शक्ति में कमी, जैव विविधता में कमी, अनियमित भूजल स्तर, जलवायु परिवर्तन एवं आर्थिक नुकसान प्रमुख रुप से होता है। भारत में सभी प्रकार की जलवायु जैसे शितोष्ण, सम शितोष्ण, कटिबंधीय, उष्ण कटिबंधीय इत्यादि पर खेती की जाती है। विश्व की जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ भूमि क्षरण की समस्याऐं भी बढ़ती रहेंगी जिसकी वजह से उपजाऊ मृदा एवं अनाज के लिए विभिन्न देशों के बीच खाद्य सुरक्षा के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी। इन समस्याओं से निपटने के लिये विश्व में भूमि क्षरण को रोकने तथा प्राकृतिक संसाधनों का इष्टत्म उपयोग एवं तरीकों पर पिछले कई वर्षों से विकल्पों की तलाश जारी है। भूमि संसाधन का उपयोग एवं प्रबन्धन की विधियों पर मृदा की उत्पादन क्षमता निर्भर करती है। मृदा में कार्बनिक पदार्थों का प्रबन्धन अति महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मृदा संरचना के स्थिरिकरण के लिए आवश्यक है। सघन कृषि के अन्तर्गत खेतों की लम्बे समय तक जुताई करने से अधोसतह में एक मजबूत परत (*क्रस्ट*) बन जाती है जिससे मृदा संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन की वजह से असमय वर्षा, अनियमित वर्षा जल का वितरण, मार्च महीने में तापमान का एकाएक से बढ़ना (*टर्मिनल हीट*), औलावृष्टि, अतिवृष्टि, कीट व बीमारियों का प्रकोप इत्यादि जैसी कई गंभीर समस्याएं पूरे विश्व के सामने बाँहें फैलाये खड़ी हैं। भारत के अधिकांश हिस्सों में भू–जलस्तर वर्ष दर वर्ष नीचे जाता जा रहा है जो कि एक चिंता का विषय बना हुआ है फिर भी भू–जल का दोहन ज्यों का त्यों बना हुआ है। कई राज्यों में भू–जलस्तर खतरे के निशान से नीचे जा चुका है फिर भी वहां ज्यादा पानी की मांग वाली फसलें जैसे धान एवं गन्ना इत्यादि की खेती निरन्तर की जा रही है जिससे हरियाणा, पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश भी अछूता नहीं है। हमें अपना कल सुरक्षित रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के उचित प्रबन्धन के प्रति आज ही सजग होने की आवश्यकता है। आज इस प्रतिस्पर्धा के दौर में किसान अधिक से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए अपने खेतों में अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग कर रहा है जिससे मिट्टी में पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का संतुलन दिन प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है जिसके दूरगामी परिणाम आने वाली पीढ़ियों को भुगतने होंगे। जहाँ एक तरफ मृदा की घटती उत्पादन क्षमता की समस्या है वहीं दूसरी ओर बढ़ती जनसंख्या की वजह से खाद्यान्न सुरक्षा भी चिंता का विषय बनी हुयी है। ऐसे समय में हमें ऐसी खेती की ओर ध्यान देना चाहिए जिससे प्राकृतिक संसाधनों का इष्टत्म उपयोग हो एवं मृदा का स्वास्थय बना रहे। ऐसे में संरक्षण खेती का नाम उभर कर हमारे सामने आता है।

संरक्षण खेती कृषि की वह पद्धति है जिसके अन्तर्गत संसाधन संरक्षण तकनीक की सहायता से टिकाऊ उत्पादन स्तर के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुये फसल उत्पादन लिया जाता है। संरक्षण खेती मृदा की ऊपरी व निचली सतह के अन्दर प्राकृतिक जैविक क्रियाओं को बढ़ाने पर आधारित है। संरक्षण खेती के तीनों सिद्धान्तोंः न्यूनतम जुताई, स्थायी रूप से मिट्टी को आच्छादित करना तथा फसल विविधिकरण को अपनाकर ही फसल उत्पादन के स्तर को टिकाऊ बनाया जा सकता है। संरक्षण खेती प्रणाली में उपलब्ध संसाधनों का ईष्टतम् उपयोग एवं संरक्षण करते हुये, किसी स्थान की भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार टिकाऊ फसल उत्पादन लेने के लिए नये–नये तरीके अपनाये जाते हैं। यह तरीके तीन सिद्धान्तों पर आधारित रहते हैं जोकि निम्न हैंः–

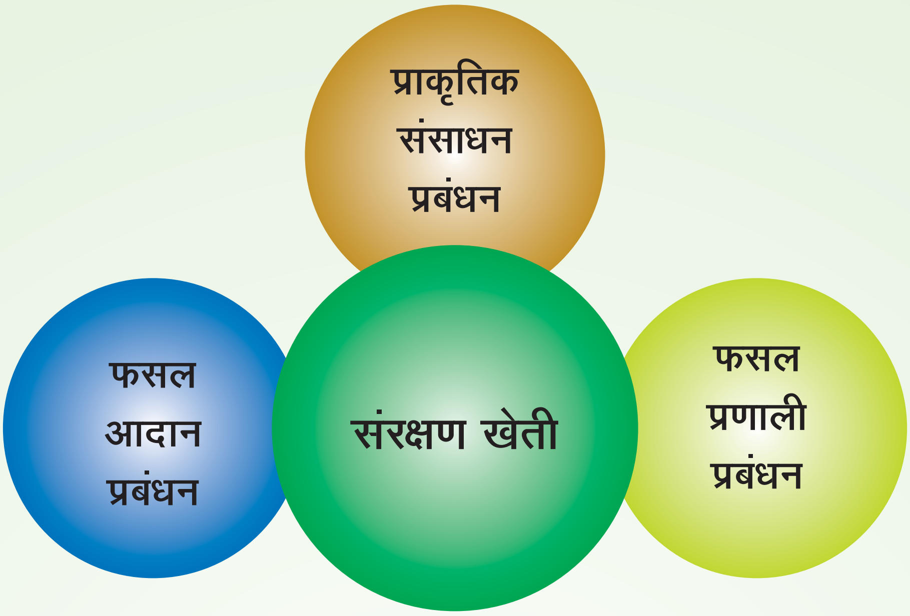

संरक्षण खेती का पारस्परिक घटकों से सम्बंध एवं सामंजस्य

(क) खेत की सतह की न्यूनतम जुताई : कार्बनिक पदार्थ मृदा का महत्वपूर्ण अवयव है क्योंकि यह फसलों को पोषक तत्व प्रदान करता है तथा मृदा संरचना के स्थिरीकरण में मदद करता है एवं लाभदायक जीवाणुओं की संख्या बढ़ाता है। निरंतर जुताई करने से मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों का ऑक्सीकरण बढ़ता है जिससे

जीरो–टिलेज से बुवाई किये गये गेहूँ का जमाव

मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की कमी हो जाती है और मृदा की उर्वरा शक्ति एवं उत्पादन क्षमता में कमी आ जाती है। भूपरिष्करण यंत्र जैसे हैरो, कल्टीवेटर, रोटावेटर इत्यादि मिट्टी की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में परिवर्तन लाते हैं जिससे मृदा क्षरण को बढ़ावा मिलता है। अतः संरक्षण खेती में मिट्टी की न्यूनतम जुताई को अपनाकर कर ईंधन एवं मानव श्रम दोनों की बचत की जा सकती है।

(ख) स्थायी रूप से मृदा सतह पर फसल अवशेष बनाये रखना : संरक्षण खेती में न्यूनतम जुताई की जाती है जिससे फसल अवशेष मृदा की सतह पर बने रहते हैं। यह आवरण मृदा को वर्षा, धूप इत्यादि के हानिकारक प्रभावों से रक्षा करता है जिससे मृदा क्षरण बहुत कम हो जाता है। मृदा में फसल अवशेषों के जमाव से सूक्ष्मजीवों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मृदा पर फसल अवशेष आवरण की वजह से मृदा सतह पर सूक्ष्म वातावरण (*माइक्रोक्लाईमेट*) जीवाणुओं, शैवालों, कवकों एवं केंचुओं के अनुरूप हो जाता है जिससे उनकी संख्या में काफी बढ़ोतरी होती है एवं जैव भार में वृद्धि हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप फसल अवशेषों का विघटन होता है और एक अच्छी ह्यूमस तैयार हो जाती है। ह्यूमस मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को बढ़ाती है, साथ ही साथ फसल के लिए उपयुक्त वातावरण और पोषण प्रदान करती है। मृदा गुणवत्ता में सुधार से सूक्ष्मजीव विविधता में वृद्धि होती है जिससे फसलों पर कीटों एवं बीमारियों का प्रकोप कम होता है। इस खेती की प्रणाली में पानी का रिसाव बढ़ जाता है जिसकी वजह से पानी का सतही अपवाह बहुत हद तक कम हो जाता है जो कि मृदा क्षरण को कम करके भूजल संसाधनों को बढ़ाने में सहायक है। संरक्षण खेती में केंचुए और पौधों की जड़ें जैविक जुताई का काम करते हैं जिससे कार्बनिक पदार्थ एवं पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण/रिसाइकलिंग अच्छा होता है।

धान के फसल अवशेषों द्वारा मृदा का अस्थायी आवरण

(ग) टिकाऊ तथा लाभदायक फसल प्रणाली : खेत में फसलों को अदल बदल कर लगाने से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ एवं जीवाणुओं की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है जिसके फलस्वरूप फसल को पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है। फसल विविधिकरण मिट्टी की उर्वरता बनाए रखता है तथा फसल सम्बंधित कीटों एवं रोगों के रोगजनक ध्वंसावशेष (*कैरी ओवर*) प्रभाव को तोड़ता है। इसको अपनाने से पानी, पोषक तत्वों, कार्बनिक पदार्थों इत्यादि का मृदा प्रोफाइल में बेहतर वितरण होता है जिसका परिणाम मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर सीधा पड़ता है।

खरीफ में मक्का के साथ फसल विविधिकरण

संरक्षण खेती के सिद्धांतों को पूर्ण रूप से लागू करने के लिए कई संसाधन संरक्षण तकनीकें अपनायी जाती हैं जैसे लेजर लेवलर, बैड प्लान्टर, हैप्पी सीडर/ टर्बो सीडर से शून्य जुताई, बूंद–बूंद सिंचाई, आदि जिससे फसल संसाधनों का प्रबंधन सुचारू रूप से किया जा सके। ये सभी तकनीकें संसाधानों की कुशलता बढ़ाती हैं।

2. विश्व में संरक्षण खेती का दायरा

संरक्षण खेती को विश्व की सभी प्रकार की जलवायु जैसे शितोष्ण, सम शितोष्ण, कटिबंधीय, उष्ण कटिबंधीय इत्यादि में अपनाया जा सकता है। इसको समुद्र तल से 3000 मीटर की ऊंचाई (बोलिविया) तक और 250–3000 मिलिमीटर (चिली) वर्षा वाले क्षेत्रों तक आसानी से उगाया जा सकता है। ब्राजील में मृदा कटाव को रोकने के लिए संरक्षण खेती पर वर्ष 1962 में कार्य शुरू किया गया था। न्यूनतम/जीरो–टिलेज, मिट्टी की सतह पर फसल अवशेष को कायम रखना तथा उचित फसल चक्र अपनाकर विश्व के कई स्थानों पर संरक्षण खेती लगभग 40 वर्षों पूर्व से अपनायी जा रही है। पूर्ण रुप से (सभी तीन सिद्धान्तों पर आधारित) संरक्षण खेती की तकनीक को अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, अर्जेंटीना, ब्राजील इत्यादि ने बड़े स्तर पर अपनी परिस्थितियों एवं क्षमताओं

के अनुसार अपनाया है। संरक्षण खेती विश्व में कुल कृषि योग्य भूमि के लगभग 8.5 प्रतिशत क्षेत्रफल में होती है जोकि लगभग 124 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र है जिसका 90 प्रतिशत क्षेत्र अर्जेंटीना, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, कनाडा तथा अमेरिका में स्थित है (लेखाचित्र 1)। भारत के सिंधु–गंगा के मैदानों या उत्तर पश्चिमी इलाकों में पिछले 15 वर्षों से इस क्षेत्र में काम किया जा रहा है और अब तक लगभग 2 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र इसके अर्न्तगत आ चुका है। एशिया महाद्वीप के अर्न्तगत 3 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र है जिसमें इसका ज्यादातर क्षेत्र धान–गेहूँ प्रणाली के अन्तर्गत है। जिसके तहत पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र सम्मिलित हैं। आजकल इस तकनीक पर काम तीव्र गति से चल रहा है जिससे आने वाले समय में इसके क्षेत्र में बढ़ोत्तरी होने की अपार संभावनाएं नजर आती हैं। संरक्षण खेती के सभी सिद्धान्तों को अपनाकर हम आने वाले समय में विकराल रूप से खड़ी समस्याओं जैसेः खाद्य सुरक्षा, मृदा एवं जल संरक्षण, ग्रामीण आजीविका, जैव विविधता एवं जलवायु परिवर्तन से कुछ सीमा तक निजात पाने में सक्षम हो सकते हैं।

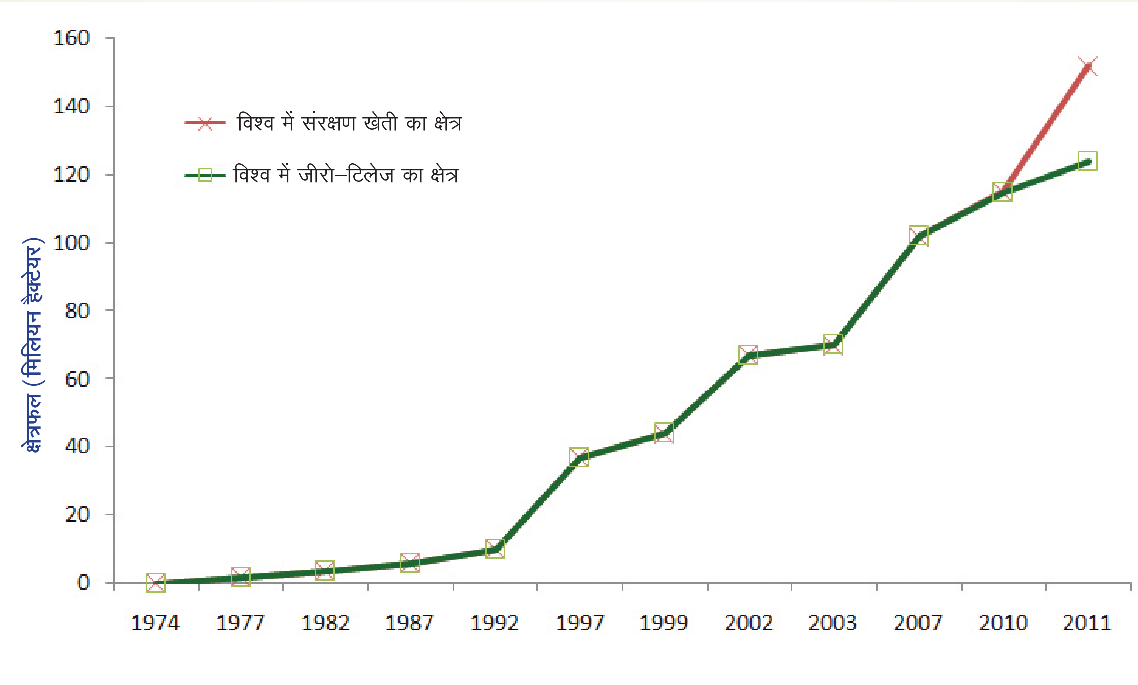

लेखाचित्र 1: विश्व में संरक्षण खेती के अन्तर्गत क्षेत्रफल (स्रोत : फ्रेडरिक एवं अन्य; 2011)

3. भारत में संरक्षण खेती का क्षेत्र

विश्व के अन्दर 80 प्रतिशत से ज्यादा संरक्षण खेती वर्षा आधारित पारिस्थितिकी तंत्र के तहत आती है जबकि भारत में संरक्षण खेती प्रणाली सिंचित पारिस्थितिकी तंत्र वाले क्षेत्रों में अपनायी जा रही है जिसमें मुख्यतः गंगा के मैदानी क्षेत्र हैं। सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली लगभग 10.3 मिलियन हैक्टेयर में अपनायी जाती है। संरक्षण खेती आधारित तकनीकियों को धान–गेहूँ प्रणाली में लगभग 2.0 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल में अपनाया जा रहा है जिसका ज्यादातर क्षेत्र जीरो–टिल गेहूँ के अधीन है। वर्षा आधारित पारिस्थितिकी तंत्र वाले क्षेत्रों में पशुओं का प्रति इकाई जमीन पर दबाव अधिक होने के कारण वहाँ पर मृदा सतह को ढकने के लिए फसल अवशेष पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नही होते हैं। भारतीय गंगा के मैदानी क्षेत्रों में धान की पुआल/फसल अवशेष पशुओं द्वारा नहीं खाये जाने के कारण इसको मृदा सतह के आवरण के लिए मल्चिंग/पलवार के रूप में काम लिया जाता है तथा गेहूँ की सीधी बिजाई जीरो–टिल ड्रिल द्वारा धान के फसल अवशेषों में कर दी जाती है। संरक्षण खेती प्रणाली के अन्दर धान–गेहूँ की उत्पादकता किसी विशेष स्थान, वातावरण एवं उपस्थित

संसाधनों पर निर्भर करती है। संरक्षण खेती को पूर्ण रुप से लागू नहीं करने के कारण फसलों की उत्पादकता पारंपरिक खेती के तुलना में कहीं कम, कहीं अधिक एवं समतुल्य आ रही है। भारत में धान के अलावा दूसरी ऐसी कोई धान्न फसल नहीं है जिसकी पैदावार लेने के बाद फसल अवशेष के रूप में छोड़ सकें, इसलिए संरक्षण खेती इस फसल प्रणाली के लिए उपयुक्त प्रणाली है। अन्य फसलों से हमें फसल अवशेष बहुत कम मिलते हैं और यदि मिलते हैं तो किसान उनको काटकर पशुओं को चारे के रूप में खिलाता है। अतः आने वाले समय में धान–गेहूँ प्रणाली में संरक्षण खेती की अपार सम्भावनाएं हैं। भारत के बारानी या वर्षा आधारित क्षेत्रों में यह प्रणाली अभी तक इतनी कारगर साबित नहीं हुई है जिसके मुख्य कारण फसल अवशेषों की कमी, वर्षा का अनियमित होना और मृदा क्षरण जैसी कई समस्याएं हैं। लेकिन यदि इसको इन क्षेत्रों में ठीक ढंग से लागू किया जाये तो यहां इसकी अपार संभावनाएं नजर आती हैं।

भारतवर्ष की खाद्य सुरक्षा में सिंधु–गंगा के मैदानी क्षेत्र अहम भूमिका अदा करते हैं। हरियाणा राज्य भारतवर्ष के कुल क्षेत्रफल का मात्र 1.4 प्रतिशत है जिस पर यहां की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आधारित है। भारतवर्ष में हरियाणा संरक्षण खेती पर काम करने वाला एक अग्रणी प्रान्त है। खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से धान–गेहूँ फसल प्रणाली एक महत्वपूर्ण फसल प्रणाली है लेकिन इस फसल प्रणाली से प्राकृतिक संसाधनों जैसे पानी व मृदा का दोहन भी इस प्रान्त में अधिक हुआ है। हरियाणा के 114 में से 70 खण्डों में पानी का आवश्यकता से अधिक दोहन हो चुका है। पिछले चार दशकों में फसल अवशेषों के गलत प्रबंधन व धान–गेहूँ फसल प्रणाली में कद्दू (*पडलिंग*) करने की प्रक्रिया से भूमि व वातावरण सम्बंधी गुणों पर विपरीत प्रभाव पड़ने के कारण फसल उत्पादन लागत में वृद्धि हुई है। कृषि मजदूरों की आवश्यकता, पानी के दोहन, उर्जा उपयोग व उत्पादन खर्च को ध्यान में रखते हुये विकल्प तलाशने होंगे जो हमें आनी वाली समस्याओं के समाधान के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों का संचय करते हुये खाद्य सुरक्षा में मदद करें। हरियाणा प्रान्त में इन उभरती समस्याओं के समाधान के लिये संरक्षण खेती पर राज्य, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस दिशा में अनुसंधान कार्य जोर–शोर से चल रहे हैं ताकि खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ उत्पादकता में टिकाऊपन लाया जा सके। वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय मक्का एव गेहूँ अनुसंधान केन्द्र (*सिमिट*), भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् की विभिन्न संस्थाओं, कृषि विभाग हरियाणा, हरियाणा किसान आयोग, हरियाणा सरकार, निजी क्षेत्र के संगठनों, किसान सहकारी समितियों और लघु उद्यमियों आदि संस्थाओ के साथ मिलकर कार्य कर रही है। ये संस्थायें दिनों दिन गंभीर होती एवं उभरती चुनौतियों जैसे क्षीण होते प्राकृतिक संसाधनों, घटते जलस्तर, कृषि में श्रम की कमी, बढ़ती ऊर्जा एवं कृषि उत्पादन आदानों की लागत, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों आदि से निपटने.के लिए विभिन्न प्रकार की तकनीकियों के विकसित करने व इनके प्रभावी तरीके से क्रियान्वन के लिए विभिन्न परियोजनाओं जैसेः दक्षिण एशिया के लिए खाद्यान्न प्रणाली उपक्रम (सीसा), गेहूँ एवं मक्का पर सी.जी.आई.ए.आर. (अंतर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान पर परामर्श समूह) अनुसंधान कार्यक्रम और जलवायु परिवर्तन के साथ कृषि एवं खाद्यान्न सुरक्षा (*सिकेफ्स*) के तहत मिलकर काम कर रही हैं।

4. संरक्षण खेती के फायदे

किसी भी विशेष प्रक्षेत्र में फसलों, फसल प्रणालियों का प्रबंधन वहां पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं प्रबंधन तकनीकियों के अनुसार करना आज के समय की जरुरत बन गयी है। नवीन तकनीकियों को व्यापक स्तर पर अपनाने के लिए एक बड़े नियोजित समूह को आकर्षित करने की जरूरत होती है। इसमें किसानों को जो वे कर रहे हैं और उनको क्या जरूरत है के बीच अन्तर को समझाने की आवश्यकता पड़ती है। संरक्षण खेती को वृहद स्तर पर लागू करने के लिए इससे मिलने वाले लाभों के प्रति जागरूकता बढ़ानी होगी। इससे मिलने वाले लाभ निम्न प्रकार हैंः–

(क) आर्थिक फायदे

फसल सघनीकरण के कारण भूमि में मुख्य पोषक तत्वों जैसेः नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर के साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक, लोहा, मैंगनीज इत्यादि की कमी के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति का गिरना, भू–जलस्तर में गिरावट, कृषि मजदूरों में कमी व कृषि आयातों की बढ़ती कीमतों की वजह से पारम्परिक खेती के अन्तर्गत उत्पादन खर्च में वृद्धि व शुद्ध मुनाफे में कमी हो रही है। जबकि दूसरी ओर संरक्षण खेती को अपनाकर पारम्परिक खेती की तुलना में 25–30 प्रतिशत तक समय, ईंधन व मजदूरी की बचत की जा सकती है। पारम्परिक खेती की मौजूदा कृषि पद्धतियों में मजदूरों की उपलब्धता दिन प्रतिदिन घटती जा रही है व इस पर होने वाले खर्च में भी निंरतर वृद्धि हो रही है। संरक्षण खेती में बुआई पर होने वाले खर्च को 5000 रुपये प्रति हैक्टेयर तक आसानी से कम किया जा सकता है।

(ख) मृदा में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि

संरक्षण खेती में मिट्टी को स्वस्थ तथा उसकी पैदावार बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि मिट्टी की सतह पर फसल अवशेषों का पर्याप्त आवरण हो। मृदा में फसल अवशेष का स्थायी आवरण होने के कारण उसमें उपस्थित सूक्ष्म जीवों की जैविक गतिविधियां बढ़ जाती हैं जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप फसल को समुचित मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। कार्बनिक पदार्थ का मृदा के भौतिक गुणों जैसेः मृदा संरचना, जल धारण क्षमता, मृदा भार घनत्व, उर्वरक उपयोग क्षमता, मृदा समुच्चय, मृदा पारगम्यता दर, पोषक तत्व प्रतिधारण (*रिटेंशन*) को फसल के जड़ीय क्षेत्र (*राइजोस्फियर*) में बढ़ाने में मुख्य भूमिका है। संरक्षण खेती के अन्दर किसान का मित्र कहे जाने वाले केंचुए की संख्या में वृद्धि होती है। फसलों की जड़ों एवं केंचुए द्वारा बनाये हुये छिद्रों में पानी एवं हवा का अनुपात (1:1) बना रहता है जिससे फसलों की वृद्धि एवं विकास ठीक ढंग से होता है।

(ग) प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं समुचित उपयोग

संरक्षण खेती प्रणाली को अपनाने से पर्यावरण एवं संसाधन दोनों का संरक्षण होता है। न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष का स्थायी आवरण तथा फसल विविधिकरण अपनाने से मृदा एवं जल संसाधनों की गुणवत्ता और फसल की उत्पादक क्षमता बढ़ती है। फसल अवशेष जैव विविधता, जैविक गतिविधियों एवं वायुवीय गुणवता में बढ़ोत्तरी करते हैं। यह कार्बन को संचय (*सिक्वेस्ट्रेशन*) करने एवं मृदा तापमान को नियंत्रित करने में भी सहायक होती है। मृदा सतह पर उपस्थित फसल अवशेष मृदा सतह पर बहने वाले पानी (*रन ऑफ*) और हवा की गति को कम कर देते हैं जिससे मिट्टी के महीन कणों का उपरी सतह से विस्थापन एवं मृदा काबर्निक पदार्थों का क्षरण बहुत कम हो जाता है। फसल अवशेष मृदा सतह से पानी का वाष्पीकरण कम करने में सहायक होते हैं जिससे अधिक समय के लिए मृदा में नमी बनी रहती है।

(घ) पर्यावरणीय लाभ

फसल अवशेषों में बुआई करने वाली मशीनों के अभाव एवं किसानों के साफ–सुथरा खेत रखने की सोच के कारण सिंधु–गंगा के उत्तर–पश्चिमी मैदानी इलाकों में फसल अवशेषों से छुटकारा पाने के लिए फसल अवशेषों को पूरी तरह से जलाने का परम्परा बनी हुयी है। धान के अवशेषों को जलाने से इनमें से जहरीली गैसें जैसेः कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2), नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O), कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) आदि निकलती हैं जिनसे समूचा वातावरण प्रदूषित हो जाता है एवं मृदा के पोषक तत्वों तथा जैव पदार्थों को नुकसान होता है।

सिंधु–गंगा के उत्तर–पश्चिमी मैदानी इलाकों में जलते हुये धान के फसल अवशेश

टर्बो सीडर द्वारा धान के फसल अवशेषों में गेहूँ की बुवाई

धान की पुआल के जलाने से कार्बन – लगभग 90–99 प्रतिशत, नाइट्रोजन – 80 प्रतिशत, फास्फोरस एवं पोटेशियम – 20 प्रतिशत तथा सल्फर – 50 प्रतिशत का नुकसान होता है। धान की पुआल में लगभग 50–55 प्रतिशत कार्बन, 0.62–0.68 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.20–0.23 प्रतिशत फास्फोरस एवं 0.78–1.15 प्रतिशत पोटेशियम होते हैं जो जलाने के उपरान्त नष्ट हो जाते हैं। धान की पुआल को जलाने पर उसमें उपस्थित कार्बन का 70, 7 एवं 0.7 प्रतिशत उत्सर्जन कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड एवं मिथेन के रुप में होता है जबकि कुल नाइट्रोजन

का 2.1 प्रतिशत हिस्सा नाइट्रस ऑक्साइड के रुप में उत्सर्जित होता है। पूरे भारत में लगभग 92.81 मिलियन टन फसल अवशेषों को जला दिया जाता है जिससे काफी मात्रा में पौधों के लिए जरुरी पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। पंजाब एवं हरियाणा में अनुमानतः 1.96 एवं 0.91 मिलियन टन फसल अवशेषों को प्रतिवर्ष जला दिया जाता है।

संरक्षण खेती आधारित फसल प्रणालियों को अपनाकर पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है तथा साथ ही उपलब्ध संसाधनों को समुचित उपयोग में भी लाया जा सकता है। संरक्षण खेती में हैप्पी/टर्बो सीडर तथा रोटरी डिस्क ड्रिल की मदद से गेहूँ को धान के अवशेषों के मध्य (10 टन फसल अवशेष भार के साथ) सफलतापूर्वक बोया जा सकता है।

(ङ) सीमान्त ताप (*टर्मिनल हीट*) प्रभाव

मृदा की सतह पर अवशेषों को रखने से मिट्टी में नमी का संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण तथा मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है। अवशेषों को मिट्टी पर बनाए रखने से न केवल मृदा सुधार होगा बल्कि सूक्ष्म वातावरण भी फसल के अनुकूल होगा। गेहूँ की फसल में प्रकाश संशलेषण की दर 20–25 डिग्री सैल्सियस पर अधिकतम होती है तथा यह 30 डिग्री सैल्सियस के बाद तेजी से गिरने लगती है। गेहूँ की फसल में मार्च के महीने में तापमान के 35 डिग्री सैल्सियस से अधिक होने पर इसका सीधा प्रभाव गेहूँ की उत्पादकता पर पड़ता है जिसे हम सीमान्त ताप प्रभाव के नाम से जानते हैं। इस तापक्रम के बाद प्रत्येक डिग्री सैल्सियस की बढोत्तरी पर 4–5 प्रतिशत उपज में कमी आती है। संरक्षण आधारित खेती करने से सीमान्त ताप प्रभाव को नियंत्रित किया जा सकता है एवं इसकी वजह से गेहूँ की फसल में होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है। मृदा सतह पर उपस्थित फसल अवशेष तापमान को 1–3 डिग्री सैल्सियस तक कम करने में सक्षम होते हैं जिससे फसल के सूक्ष्म पर्यावरण में तापमान गेहूँ की जरुरत के अनुसार बना रहता है। फसल अवशेषों की वजह से कम होने वाला तापमान मृदा सतह पर उपस्थित अवशेष भार पर निर्भर करता है। सीमान्त ताप की वजह से समय पूर्व परिपक्वता के कारण गेहूँ के दाने सिकुड़ जाते है जिसकी वजह से कम उत्पादन प्राप्त होता है। दानों की गुणवत्ता एवं आकार खराब होने से अच्छे बाजार भाव नहीं मिलते हैं जिसकी वजह से किसान को भारी खामियाजा भुगतना पडता है।

5. भविष्य की खाद्यान्न आपूर्ति के लिए संरक्षण खेती आधारित योजना

सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली प्रमुख है। यह लगभग 10.3 मिलियन हैक्टेयर में फैली हुई है तथा भारत के धान और गेहूँ के कुल क्षेत्रफल में इसका 23 प्रतिशत और 40 प्रतिशत योगदान है। भारत के कुल खाद्यान्न का लगभग 30 प्रतिशत अनाज इसी क्षेत्र की धान–गेहूँ फसल प्रणाली से आता है इसलिए यह फसल प्रणाली भारत की खाद्य सुरक्षा के लिए रीढ़ की हड्डी की तरह है। पारम्परिक (कद्दू करके प्रतिरोपण) धान की खेती में ज्यादा संसाधनों (पानी, श्रम तथा ऊर्जा) की आवश्यकता होती है। सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में इन सभी संसाधनों की लगातार हो रही कमी के कारण धान का उत्पादन पहले की तुलना में कम लाभप्रद हो रहा है। धान उत्पादन का यह तरीका मिथेन उत्सर्जन को बढाता है जो कि वैश्विक तपन का एक मुख्य कारण है। कद्दू करके प्रतिरोपित धान की फसल से धान की सीधी बिजाई (वैकल्पिक शुष्क व नम) की तुलना में लगभग 75 प्रतिशत अधिक वैश्विक तपन होता है जो मुख्यतः मिथेन गैस उत्सर्जन के कारण होता है। धान की पारम्परिक खेती मिट्टी के भौतिक गुणों जैसे मिट्टी कि संरचना, मिट्टी सघनता तथा अंदरुनी सतह में जल की पारगम्यता आदि को खराब कर देती है जिससे भविष्य में मिट्टी की उपजाऊ क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। तप्पड़ भूमि में धान की सीधी बिजाई करने से जहाँ एक ओर इसका मृदा स्वास्थ्य पर सकारात्मक असर होता है वहीं दूसरी ओर गेहूँ की फसल अगेती लगाने से इसका उत्पादन पर सीधा प्रभाव देखा गया है। इसके साथ ही, पारम्परिक विधि से की गई धान–गेहूँ फसल प्रणाली की तुलना में तप्पड़ मृदा में गेहूँ की उपज में वृद्धि देखी गई है।

इसी प्रकार परम्परागत तरीके से भूमि की तैयारी के लिए गहन जुताई की जाती है। धान की कटाई के बाद गेहूँ की फसल बोने के लिए पलेवा किया जाता है और खेत को बह्त्तर (*वप्सा कंडीशन*/बिजाई योग्य मृदा में नमीं का स्तर) में आने में 20–25 दिन लग जाते हैं। वातावरणीय तापमान के नीचे गिरने के कारण धान की कटाई तथा गेहूँ के बीज बोने के बीच की प्रतिवर्धन अवधि लंबी हो जाती है तथा गेहूँ के बुआई में विलंब (20 नवम्बर के बाद) होने के कारण लगभग 25–30 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर प्रति दिन के हिसाब से उपज का नुकसान भी होता है। इस नुकसान से बचने के लिए संरक्षण खेती आधारित गेहूँ की जीरो–टिल बुआई एक अच्छा विकल्प है जिसको सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली में बहुतायत से अपनाया जा रहा है क्योंकि इससे खेत की तैयारी में लगने वाला समय बच जाता है तथा खेत में नमीं का स्तर बुआई के योग्य जल्दी आ जाता है। फसल उत्पादकता में गिरावट तथा कुल कारक उत्पादकता में गिरावट के कारण सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली पर खतरा मंडरा रहा है। इसके लिए कई कारकों/समस्याओं को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं:–

1. मानव श्रम की बढ़ती कमी
2. भू–जलस्तर में गिरावट
3. प्राकृतिक संसाधनों में कमी या गिरावट (मिट्टी, पानी और वायु की गुणवत्ता में गिरावट)
4. कृषि निवेश वस्तुओं का अक्षय तथा अप्रभावी उपयोग (उर्वरक, जल, श्रम और कीटनाशकों)
5. बढ़ते कृषि निवेश वस्तुओं की लागत (जैसेः मजदूरी, ईंधन, उर्वरक तथा कीटनाशकों) के कारण उत्पादन लागत में वृद्धि
6. जलवायु तथा मनुष्य की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में प्रतिकूल परिवर्तन
7. तीव्र गति से जनसंख्या में वृद्धि के कारण भूमि, जल तथा ऊर्जा में गिरावट
8. वातावरण एवं जलवायु सम्बंधी परिवर्तन

6. संरक्षण खेती आधारित एक सामरिक परियोजना– सीसा

भविष्य में टिकाऊ खाद्यान्न उत्पादन करने के लिए सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में ऐसी संरक्षण खेती आधारित फसल एवं संसाधन प्रबंधन क्रियाओं का विकास करना है जो जलवायु परिवर्तन, जल, श्रम और ऊर्जा को ध्यान में रखते हुए धान–गेहूँ फसल प्रणाली में आ रही कठिनाइयों से निजात दिला सके। सीसा (दक्षिण एशिया के लिए खाद्यान्न प्रणाली उपक्रम) परियोजना, अंतर्राष्ट्रीय मक्का एव गेहूँ अनुसंधान केन्द्र एवं भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् का एक सयुंक्त उद्गम/योजना है जिसको वित्तीय सहायता बिल एवं मलिंडा गेट्स फाउंडेशन (*बी.एम.जी.एफ*) एवं अंतर्राष्ट्रीय विकास के लिए संयुक्त राज्य अमेरिकी संस्था (*यू.एस.ए.आई.डी*) से मिलती है। सीसा परियोजना का दक्षिण एशिया के कई देशों में अंतर्राष्ट्रीय मक्का एव गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (*ईरी*), अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान (*ईफरी*) एवं अंतर्राष्ट्रीय पशुधन अनुसंधान संस्थान (*ईलरी*) के द्वारा विभिन्न देशों के कृषि विभाग के साथ मिलकर क्रियान्वन किया जा रहा है। सीसा परियोजना के अध्ययन का उद्देश्य ऐसे कृषि संरक्षण और बेहतर प्रबंधन तरीकों का आंकलन करना है जो पारम्परिक अभ्यासों से उत्कृष्ट हो तथा उत्तर पश्चिमी भारत के वर्तमान तथा भविष्य चालकों (जैसे श्रम और पानी की कमी, खेती की बढ़ती लागत, मृदा की दशा में गिरावट, जलवायु परिवर्तन आदि) के भी अनुकूल हो एवं जो सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में उगाई जा रही धान–गेहूँ फसल प्रणाली को नई दिशा दे सके। सीसा परियोजना का आगामी उद्देश्य अगली पीढ़ी के लिए ऐसी खाद्यान्न प्रणाली की रुपरेखा तैयार करना है जो उच्च उत्पादकता, प्राकृतिक संसाधन दक्ष/निपुण, टिकाऊ एवं आर्थिक–सामाजिक चालकों में परिवर्तन के अनुकूल हो। विभिन्न कृषि प्रणालियों में संकेतकों की एक

विस्तृत सीमा का उपयोग करते हुये उनके प्रदर्शनों का आंकलन करने के लिए अनुसंधान प्रयोगात्मक प्लेटफार्म पर उत्पादन के निकट स्तर तथा दीर्घकालिक प्रयोगों की रुपरेखा तैयार की गयी है जिसके लिए केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल में चार परिदृश्यों को योजनाबद्ध तरीके से लागू किया गया है। प्रयोगात्मक प्लेटफार्म पर लगाये गऐ चारों परिदृश्यों को सिंधु–गंगा के मैदानीं इलाकों में किसानों के द्वारा अपनायी जा रही धान–गेहूँ फसल प्रणाली एवं उनके पास उपलब्ध संसाधनों के आधार पर डिजाइन किया गया है ताकि किसान को अपनी सुविधा के अनुसार अपनाने में दिक्कत नही आये।

इसके अलावा नई फसल प्रणाली के आंकलन और प्रमाणित करने की हमारी क्षमता में सुधार करना होगा। सीसा के व्यापक अनुसंधान कार्यक्रम के हिस्से के रूप में हमने केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल में उत्पादन स्तर के बड़े पैमाने पर प्रयोगात्मक अनुसंधान प्लेटफार्म तैयार तथा स्थापित किये हैं। सीसा परियोजना के निष्कर्षों से हमें फसल के व्यापक संकेतकों जैसे उपज, संसाधनों का उपयोग, मृदा एवं पर्यावरण की गुणवत्ता आदि पर, विभिन्न फसल प्रणालियों में अपनायी जा रही नई प्रौद्योगिकी के प्रभाव के प्रदर्शन का आंकलन करने का एक अच्छा अवसर प्राप्त होगा।

7. सीसा परियोजना के परिदृश्यों का विवरण

सीसा परियोजना सन् 2009 से केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल के प्रायोगिक प्रक्षेत्र पर चल रही है। इसमें फसल प्रणाली की जुताई, फसल स्थापना के तरीके, फसल अवशेष प्रबंधन और फसल प्रबंधन के तरीकों के आधार पर अलग–अलग चारों परिदृश्यों (*सिनेरियोज*) का मूल्यांकन किया जा रहा है। प्रत्येक परिदृश्य को 2000 वर्ग मीटर के आकार के प्लाटों में रेंडेमाइज्ड कम्पलीट ब्लॉक डिजाइन में आयोजित उत्पादन पैमाने पर तीन बार दोहराया गया। परिदृश्यों को विभिन्न चालकों पर आधारित लंबी अवधि के लिए स्थायी रूप से बनाया गया है। इस अध्ययन में परिदृश्यों का विवरण तालिका 1 में वर्णित किया गया है।

परिदृश्य 1 : इस परिदृश्य का चुनाव किसानों द्वारा अपनाए जा रहे फसल चक्र और प्रबंधन के अभ्यास पर आधारित है। जिसके लिए 10–12 गांवों के 40 किसानों पर सर्वेक्षण करके धान–गेहूँ फसल प्रणाली में अपनाये जा रहे प्रबंधों को इस परिदृश्य में समावेशित किया गया। किसान मुख्यतः खेत को कद्दू करके धान का पौध रोपण करता है जबकि गेहूँ को पारम्परिक तरीके से खेत की जुताई करके बुवाई करता है। आमतौर पर किसान गेहूँ की बुवाई से पहले धान के अवषेशों को जला डालते हैं तथा धान को लगाने से पहले गेहूँ के सभी अवशेषों को भूमि से हटा दिया जाता है। इस परिदृश्य का उद्देश्य कृषि के परम्परागत सिद्धांतों पर आधारित फसल प्रणाली को सुचारु तरीके से चलाना है।

परिदृश्य 1 में पारम्परिक पद्धति से धान–गेहूँ फसल प्रणाली

तालिका 1. विभिन्न परिदृश्यों का कृषि परिवर्तन, फसल चक्र, फसल की बुवाई, फसल स्थापना विधि और अवशेष प्रबंधन एवं कृषि के सिद्धांतों पर आधारित प्रणाली के अनुसार विवरण

फसल प्रबंधन	परिदृश्य 1	परिदृश्य 2	परिदृश्य 3	परिदृश्य 4
परिवर्तन के चालक	किसानों के वर्तमान अभ्यास के अनुरूप व्यवसाय	गहन और सर्वश्रेष्ठ प्रबंधन प्रथाओं (एकीकृत फसल और संसाधन प्रबंधन) के माध्यम से उत्पादकता और आय बढ़ाना	जल, श्रम और ऊर्जा की कमी तथा बिगड़ती मृदा स्वास्थ्य से निपटने के लिए बनायी गई प्रणाली	जल, श्रम और ऊर्जा की बढ़ती कमी और बिगड़ते मृदा स्वास्थ्य से निपटने के लिए भविष्यवादी और विविध फसल प्रणाली
फसल चक्र	धान–गेहूँ	धान–गेहूँ–मूंग	धान–गेहूँ–मूंग	मक्का–गेहूँ–मूंग
फसल की बुआई	धान–पारंपरिक जुताई (कद्दू करके प्रतिरोपण) गेहूँ–पारंपरिक जुताई	धान–पारंपरिक जुताई (कद्दू करके प्रतिरोपण) गेहूँ–तप्पड़ भूमि में जीरो–टिलेज मूंग–जीरो–टिलेज	धान– तप्पड़ भूमि में जीरो–टिलेज (धान की सीधी बुआई) गेहूँ–जीरो–टिलेज मूंग–जीरो–टिलेज	मक्का–जीरो टिलेज गेहूँ–जीरो–टिलेज मूंग–जीरो–टिलेज
फसल स्थापना विधि	धान–प्रत्यारोपित गेहूँ–छिड़काव	धान–प्रत्यारोपित गेहूँ–ड्रिल से बोना मूंग–ड्रिल/रिले छिड़काव	धान–ड्रिल से बुआई गेहूँ–ड्रिल से बुआई मूंग–ड्रिल/रिले छिड़काव	मक्का–ड्रिल से बुआई गेहूँ–ड्रिल से बुआई मूंग–ड्रिल/रिले छिड़काव
फसल अवशेष प्रबंधन	सम्पूर्ण अवशेषों को हटाया गया	धान के आंशिक (एंकर्ड) अवशेषों को सतह पर बनाए रखा, गेहूँ अवशेष (एंकर्ड) सतह पर बनाए रखा और मूंग अवशेषों को भूमि में मिलाया गया	धान तथा मूंग के सम्पूर्ण अवशेषों (100 प्रतिशत) को तथा गेहूँ के एंकर्ड अवशेषों को भूमि सतह पर बनाए रखा गया	मक्का (65 प्रतिशत, भुट्टे के नीचे का हिस्सा) तथा मूंग के सम्पूर्ण अवशेष (100 प्रतिशत) तथा गेहूँ के आंशिक (एंकर्ड) अवशेषों को भूमि सतह पर बनाए रखा गया
कृषि सिद्धांतों पर आधारित प्रणाली	कृषि के परम्परागत सिद्धांतों पर आधारित प्रणाली	आंशिक रुप से कृषि संरक्षण सिद्धांतों पर आधारित प्रणाली	पूर्णरुप से वर्तमान कृषि संरक्षण सिद्धांतों पर आधारित प्रणाली	पूर्णरुप से भविष्य कृषि संरक्षण सिद्धांतों पर आधारित प्रणाली

परिदृश्य 2 : इस परिदृश्य का उद्देश्य गहनता और बेहतर प्रबंधन के तरीकों के माध्यम से वर्तमान में उपस्थित धान–गेहूँ फसल प्रणाली की उत्पादकता और आय में वृद्धि करना है। इस परिदृश्य में धान–गेहूँ फसल प्रणाली में मूंग का समावेश किया गया है। यह परिदृश्य परिवर्तन के दौर वाला परिदृश्य है जिसमें पारंपरिक खेती एवं संरक्षण खेती का मिश्रण किया गया है। यह परिदृश्य उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है जहां गेहूँ के अवशेषों को काटकर पशुओं को चारे के रुप में खिलाया जाता है। मूंग की फसल को गेहूँ के साथ रिले फसल के रूप में लगाया जाता है।

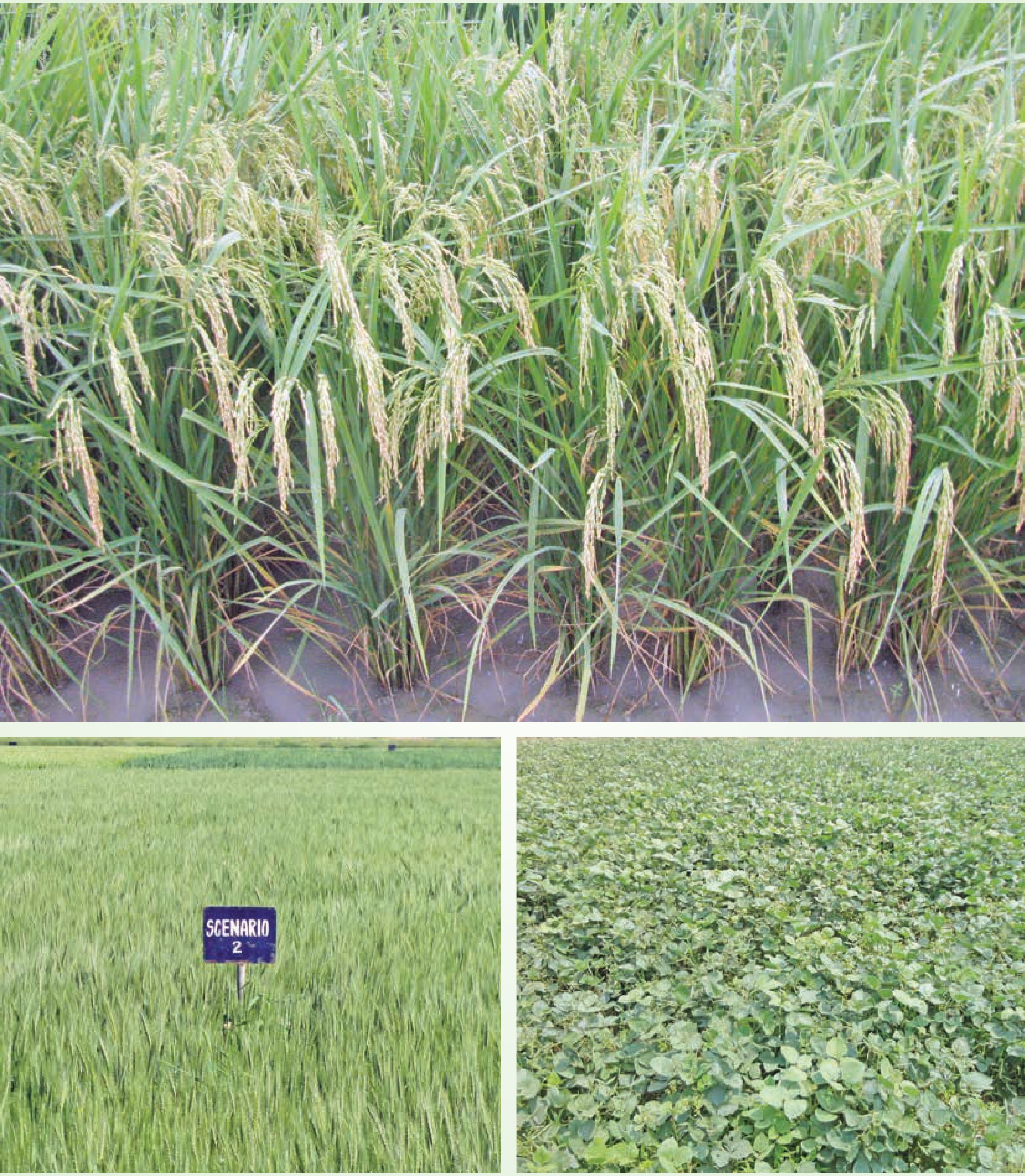

परिदृश्य 2 में धान (पारम्परिक पद्धति)–गेहूँ–मूंग (जीरो–टिल पद्धति) फसल प्रणाली

परिदृश्य 3 : इस परिदृश्य में फसलों एवं संसाधनों का प्रबंधन, सिंचाई जल, ऊर्जा और कृषि श्रमिकों की कमी की समस्या से निपटने तथा बढ़ती उत्पादन लागत और मृदा की खराब होती दशा से निपटने के लिए किया गया है। इस परिदृश्य में धान–गेहूँ–मूंग फसल प्रणाली को संरक्षण खेती के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुये लगाया गया जिसमें सभी फसलों को जीरो–टिलेज के तहत उगाया जाता है। इसमें मूंग को मौसम के अनुसार किसी वर्ष गेहूँ की कटाई के बाद ड्रिल करके व किसी वर्ष में रिले फसल के रूप में लगाया जाता है।

परिदृश्य 3 में जीरो–टिल पद्धति से धान–गेहूँ–मूंग फसल प्रणाली

परिदृश्य 4 : इस परिदृश्य का उद्देश्य खाद्यान्न पर आधारित ऐसी भविष्यविद् तथा विविध फसल प्रणाली की पहचान करना है जो परिदृश्य 3 के मुद्दों जैसेः सिंचाई जल, ऊर्जा और कृषि श्रम की समस्या से निपटने के लिए धान का एक उपयुक्त विकल्प हो। इस परिदृश्य में धान के स्थान पर मक्का को लगाया जाता है इसलिए इसमें धान–गेहूँ–मूंग की बजाय मक्का–गेहूँ–मूंग फसल चक्र अपनाया गया तथा सभी फसलों को जीरो–टिलेज के तहत ही उगाया जाता है। फसल अवशेषों का प्रबंधन तालिका 1 के अनुसार किया गया है।

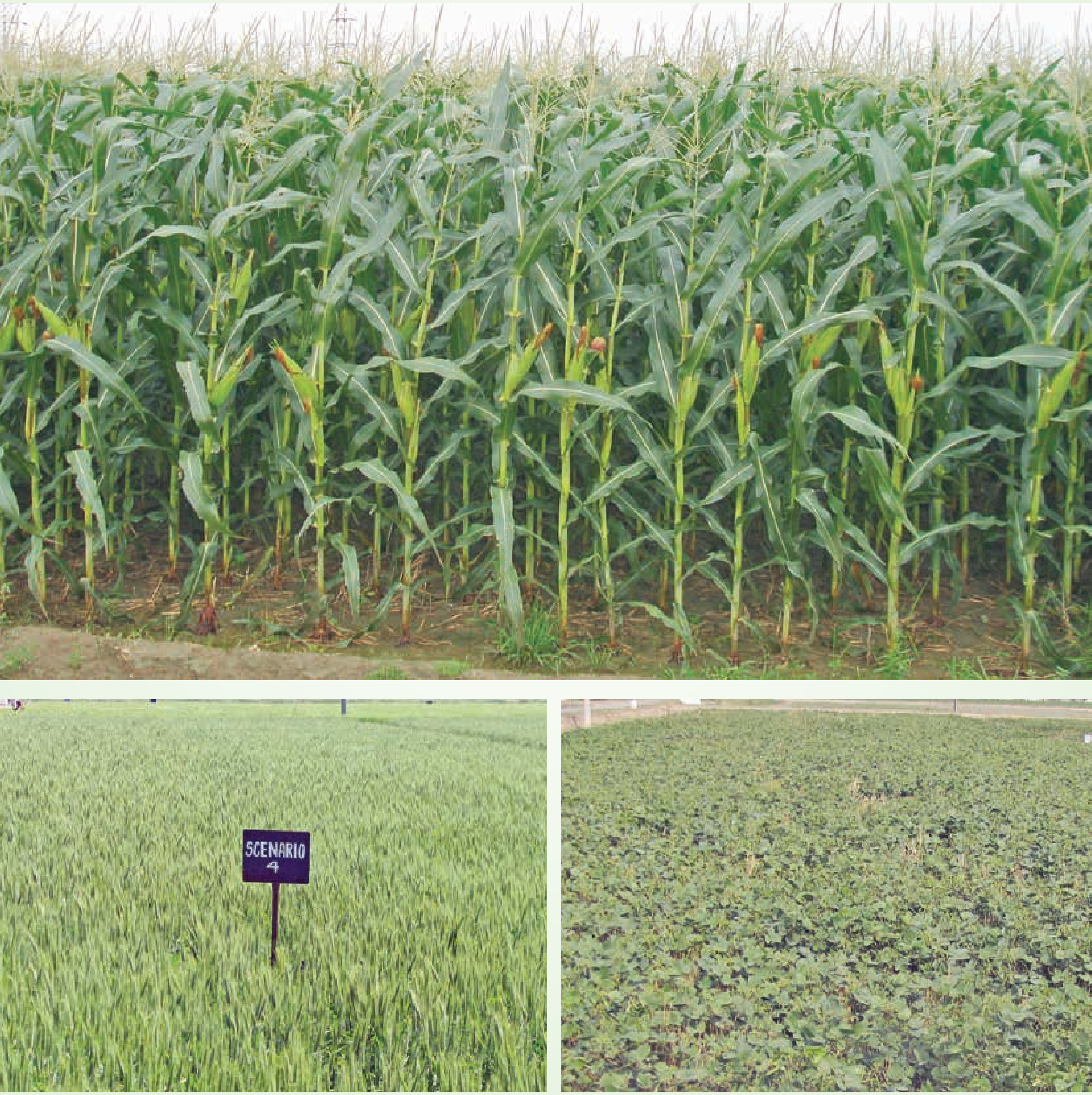

परिदृश्य 4 में जीरो–टिल पद्धति से मक्का–गेहूँ–मूंग फसल चक प्रणाली

8. विभिन्न परिदृश्यों में फसलों का प्रबंधन

फसल प्रबंधन जैसे भूमि की तैयारी, बीज दर, बुआई का समय, बीज उपचार, उर्वरक प्रबंधन, जल प्रबंधन को विभिन्न परिदृश्यों में उगाए गए धान, गेहूँ, मक्का एवं मूंग के लिए मानक मापदंडों/प्रक्रियाओं के अनुसार ही अनुसरण किया गया है। परिदृश्य 1 में पारंपरिक रूप से जोते हुए खेत में गेहूँ के बीजों का छिड़काव किया गया जबकि शेष परिदृश्यों में गेहूँ को टर्बो हैप्पी सीडर तथा जीरो–टिल सीड–कम–फर्टिलाइजर ड्रिल की मदद से बोया गया। टर्बो हैप्पी सीडर फसल के भारी अवशेषों में भी बीज तथा उर्वरक दोनों को ठीक से ड़ालने में सक्षम है। परिदृश्य 1 और 2 में धान को मानव श्रम की मदद से प्रतिरोपित किया जाता है तथा परिदृश्य 3 एवं 4 में टर्बो हैप्पी सीडर की मदद से फसलों को लगाया गया है। मूंग के लिए 65 दिन की अवधि वाली किस्म समर मूंग लुधियाना–668 को गेहूँ की कटाई तथा धान के रोपण के बीच में उपलब्ध समय में लगाया गया है। गेहूँ तथा धान की किस्मों का चयन उनकी निष्पादन क्षमता के आधार पर किया गया है। प्रथम वर्ष में गेहूँ की कटाई के बाद मूंग को 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर के बीज दर से टर्बो हैप्पी सीडर की मदद से ड्रिल किया गया जबकि दूसरे वर्ष में मूंग को गेहूँ की अंतिम सिंचाई से पहले (गेहूँ की कटाई से 15 दिन पहले) 30 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की बीज दर से पूर्व अंकुरित बीजों का छिड़काव कर गेहूँ के साथ रिले फसल के रूप में लगाया गया था। परिदृश्य 3 और 4 में परिदृश्य 2 की तुलना में 15–20 दिन पहले ही धान तथा मक्का की सीधी बुआई करने के कारण मूंग की रिले फसल की एक या दो तुड़ाई ही हो पाती है। परिदृश्य 3 और 4 में मूंग की फसल को परिपक्व होने के लिए पर्याप्त समय नही मिल पाता है जिसका प्रभाव उसकी उत्पादन क्षमता पर दिखाई देता है। पानी के सही इस्तेमाल और माप के लिए प्रत्येक प्लाट में 6 इंच पोलीविनाईल क्लोराइड (*पीवीसी*) पाइप लाइन को स्थापित किया गया है। पीवीसी पाइप लाईन को ट्यूबवैल से जोड़कर एक छोर पर 6 इंच के व्यास वाले फ्लो वाटर मीटर से जोड़ा गया है। सिंचाई के अंतराल के बीच में किसी भी प्रकार के पानी के नुकसान से बचने के लिए एक नोन रिर्टन वाल्व को ट्यूबवैल वितरण आउटलेट पर एयर–टाईट बटर फ्लाई वाल्व लगाया गया है। सिंचाई में इस्तेमाल हुए पानी के माप के लिए वाटर मीटर रीडिंग सिंचाई के शुरू और अंत में दर्ज की जाती है। सभी प्रकार की फसलों में पानी की गहराई को सिंचाई के समय 5 सेमी. तक रखने का प्रयास किया गया है तथा सिंचाई जल की मात्रा को मिलिमिटर प्रति हैक्टेयर की तर्ज पर दर्ज किया जाता है। मिट्टी की मैट्रिक क्षमता की निगरानी करने के लिए गेज टाईप टेनशियोमीटर को फसल बोने के तुरंत बाद 15 सेमी. तथा 30 सेमी. की गहराई तक सभी प्लाटो में स्थापित किया गया है। धान एवं मक्का के मौसम (*खरीफ*) में टेनशियोमीटर रीडिंग के आधार पर ही सिंचाई के लिए पानी लगाया जाता है। हालांकि गेहूँ के मौसम के दौरान पानी को गेहूँ के विकास के चरणों के आधार पर लगाया जाता है परन्तु मिट्टी की मैट्रिक क्षमता पर लगातार निगरानी रखी जाती है। कुल फसल प्रणाली उत्पादकता की तुलना के लिए धान के अलावा शेष सभी फसलों को धान के बराबर उपज में परिवर्तित किया गया है। प्रणाली उत्पादकता (धान समतुल्य) की गणना के लिए प्रणाली की सभी फसलों की उपज (धान समतुल्य) को जोड़ा गया है।

$$\text{धान समतुल्य उपज} = \frac{\text{फसल की उपज (क्विंटल प्रति है.)} \times \text{फसल का न्यूनतम् आधार मूल्य (रू. प्रति क्विंटल)}}{\text{धान का न्यूनतम् आधार मूल्य (रू. प्रति क्विंटल)}}$$

9. विभिन्न परिदृश्यों का आकलन

(क) फसल अवशेषों का समावेश

चारों परिदृश्यों में पुनः चक्रित फसल अवशेषों की मात्रा में काफी अंतर पाया गया (तालिका 2)। परिदृश्य 1 में फसल अवशेष नहीं थे वहीं दूसरी ओर परिदृश्य 2, 3 और 4 में तीन वर्षों में क्रमशः 34.05, 44.35 तथा 49.89 टन प्रति हैक्टेयर फसल अवशेष थे। गेहूँ तथा मूंग की बुवाई के समय क्रमशः परिदृश्य 2 में तीन वर्षों में 15.71 टन

प्रति हैक्टेयर एंकर्ड चावल के ठूंठ तथा 7.75 टन प्रति हैक्टेयर गेहूँ के ठूंठ को मिट्टी की सतह पर बरकरार रखा गया था जबकि धान के लिए तप्पड़ भूमि तैयार करते समय मूंग के तीन वर्षों में 10.59 टन प्रति हैक्टेयर अवशेषों को मिट्टी में मिलाया गया था। इसी तरह तीन वर्षों में परिदृश्य 3 में धान (26.79 टन प्रति हैक्टेयर) और मूंग (9.6 टन प्रति हैक्टेयर) के सम्पूर्ण अवशेषों को मिट्टी में मिलाया गया। परिदृश्य 4 में भी तीन वर्षों में धान (33.2 टन प्रति हैक्टेयर) तथा मूंग (8.88 टन प्रति हैक्टेयर) के सम्पूर्ण अवशेषों को मिट्टी में मिलाया गया था तथा गेहूँ (7.76 टन प्रति हैक्टेयर) के एंकर्ड ठूंठ को ही मिट्टी में बरकरार रखा गया था।

तालिका 2 : सीसा परियोजना के विभिन्न परिदृश्यों के तहत् तीन वर्षों में फसल अवशेषों का टर्न–ओवर

परिदृश्य	फसल प्रणाली	धान	गेहूँ	मूंग	कुल अवशेष
1.	धान (कद्दू करके प्रत्यारोपित)–गेहूँ	–	–	–	–
2.	धान (कद्दू करके प्रत्यारोपित)–गेहूँ–मूंग	15.71	7.75	10.59	34.05
3.	धान (तप्पड़ भूमि में धान की सीधी बुआई) –गेहूँ–मूंग	26.79	7.96	9.60	44.35
4.	मक्का–गेहूँ–मूंग	33.20	7.76	8.88	49.84

(ख) फसल उत्पादकता

विभिन्न परिदृश्यों में फसल उत्पादकता में भी काफी अंतर पाया गया (लेखाचित्र 2)। तीन वर्षों के परिणामों से पता चलता है कि परिदृश्य 2 में धान की सबसे ज्यादा उपज (8.06 टन प्रति हैक्टेयर) पायी गयी जो परिदृश्य 1, 3 तथा 4 से क्रमशः 13.4, 4.5 और 11.3 प्रतिशत ज्यादा है। परिदृश्य 4 में धान समतुल्य मक्का की उपज (7.24 टन प्रति हैक्टेयर) परिदृश्य 1 (7.11 टन प्रति हैक्टेयर) के बराबर पायी गयी। जीरो–टिल गेहूँ की उपज पारंपरिक जुताई की तुलनां में ज्यादा पायी गयी। परिदृश्य 2, 3, 4 में गेहूँ की उपज परिदृश्य 1 की तुलना में क्रमशः 4.86, 12.35 तथा 15.35 प्रतिशत ज्यादा पायी गयी।

धान समतुल्य प्रणाली उत्पादकता विभिन्न परिदृश्यों में अलग–अलग थी जोकि परिदृश्य 2 में सबसे ज्यादा थी (15.8 टन प्रति हैक्टेयर) तथा परिदृश्य 3 और 4 एक–दूसरे से भिन्न नहीं थी। परिदृश्य 1 में सबसे कम प्रणाली उत्पादकता (13.0 टन प्रति हैक्टेयर) दर्ज की गई थी।

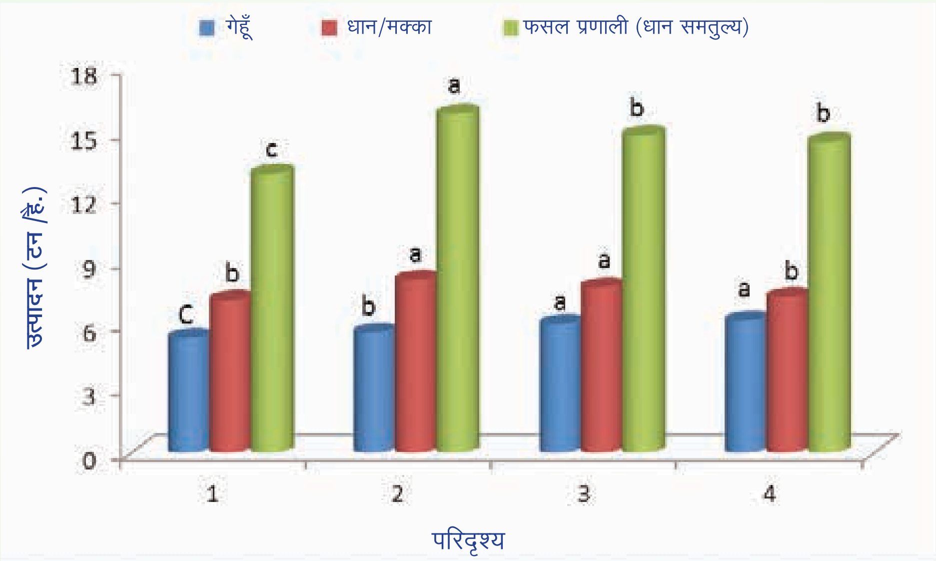

लेखाचित्र 2: तीन वर्षों के औसत आधार पर विभिन्न परिदृश्यों में फसलों की उपज

(ग) सिंचाई जल की बचत

तीन वर्षों के औसत परिणामों के आधार पर गेहूँ में सिंचाई जल का प्रयोग परिदृश्य 1 में 410 मिलीमीटर से लेकर परिदृश्य 3 में 451 मिलीमीटर तक हुआ है। हालांकि विभिन्न परिदृश्यों के बीच आपस में एक दूसरे से बहुत ज्यादा अंतर नहीं था। धान/मक्का में सिंचाई जल का प्रयोग सबसे ज्यादा परिदृश्य 1 (2275 मिलीमीटर प्रति हैक्टेयर) में हुआ था, उसके बाद परिदृश्य 2 (1533 मिलीमीटर प्रति हैक्टेयर) तथा परिदृश्य 3 (1232 मिलीमीटर प्रति हैक्टेयर) में किया था और सबसे कम सिंचाई जल का प्रयोग परिदृश्य 4 (216 मिलीमीटर प्रति हैक्टेयर) में हुआ था जहां मक्का की फसल ली गयी थी। परिदृश्य 2 में पानी को वैकल्पिक शुष्क तथा नम की विधि के अनुसार लगाया गया था जिसके कारण इसमें 31 प्रतिशत तक परिदृश्य 1 की तुलना कम सिंचाई जल की आवश्यकता हुयी।

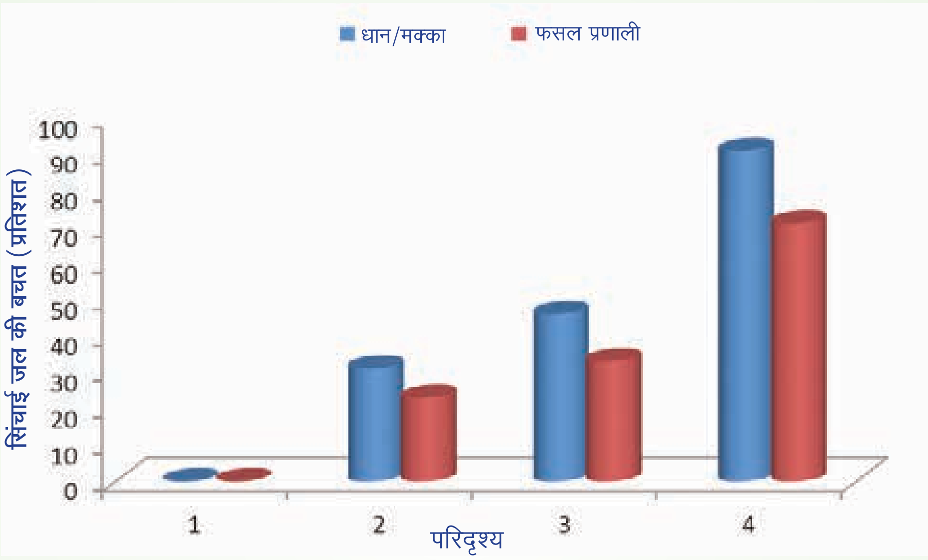

लेखाचित्र 3: तीन वर्षों के औसत आधार पर विभिन्न परिदृश्यों में सिंचाई जल की बचत

विभिन्न फसल प्रणालियों में तीन वर्षों में सिंचाई जल का उपयोग परिदृश्य 4 < परिदृश्य 3 < परिदृश्य 2 < परिदृश्य 1 के अनुसार पाया गया। परिदृश्य 1 में सबसे ज्यादा पानी की खपत (2687 मिलीमीटर प्रति हैक्टेयर) तथा परिदृश्य 4 में सबसे कम (766 मिलीमीटर प्रति हैक्टेयर) थी जबकि परिदृश्य 2 में 1533 मिलीमीटर प्रति हैक्टेयर तथा परिदृश्य 3 में 1232 मिलीमीटर प्रति हैक्टेयर रही। परिदृश्य 3 में जीरो टिल में धान की सीधी बुवाई से परिदृश्य 1 की तुलना में 46 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत हुई थी। परिदृश्य 4 जिसमें धान की जगह मक्का उगाई गई थी सिंचाई जल का प्रयोग परिदृश्य 1 से 91 प्रतिशत तक कम था तथा परिदृश्य 2 और 3 से क्रमशः 86 प्रतिशत और 82 प्रतिशत कम था। कुल प्रणाली जल प्रयोग की परिदृश्य 1 की तुलना में परिदृश्य 2, 3 और 4 में क्रमशः 23, 33 तथा 71 प्रतिशत की बचत हुई (लेखाचित्र 3)।

(घ) ऊर्जा की बचत

तीन वर्षों के औसत परिणामों के आधार पर विभिन्न परिदृश्यों में ऊर्जा का प्रयोग आपस में काफी विविध था (लेखाचित्र 4)। गेहूँ के संबंध में यह परिदृश्य 1 में अधिकतम 24,797 मेगा जूल प्रति हैक्टेयर से लेकर परिदृश्य 2 में न्यूनतम 20920 मेगा जूल प्रति हैक्टेयर तक पाया गया था। धान/मक्का के अन्तर्गत परिदृश्य 4 में अन्य परिदृश्यों की तुलना में ऊर्जा की कम खपत हुई थी (15888 मेगा जूल प्रति हैक्टेयर)। अगर हम समस्त परिदृश्य प्रणालीयों की बात करें तो भविष्यवादी परिदृश्य में सबसे अधिक ऊर्जा की बचत हुई तथा किसानों द्वारा अभ्यास (परिदृश्य 1) में ऊर्जा की अत्यधिक खपत दर्ज की गई थी। परिदृश्य 1 की तुलना में ऊर्जा की बचत गेहूँ में परिदृश्य 2 में 16

प्रतिशत थी तथा परिदृश्य 3 और 4 में 12 एवं 13 प्रतिशत थी। धान/मक्का में ऊर्जा की बचत परिदृश्य 2, 3 व 4 में परिदृश्य 1 से 27, 38 तथा 68 प्रतिशत तक ज्यादा पायी गयी। फसल प्रणाली ऊर्जा बचत की बात करें तो परिदृश्य 1 की तुलना में भविष्यवादी परिदृश्य 46 प्रतिशत ऊर्जा बचत के साथ सबसे अच्छा साबित हुआ तथा उसके बाद परिदृश्य 3 और 2 में ऊर्जा बचत क्रमशः 26 और 19 प्रतिशत रही। ऊर्जा बचत के हिसाब से परिदृश्य 4 सबसे अच्छा पाया गया।

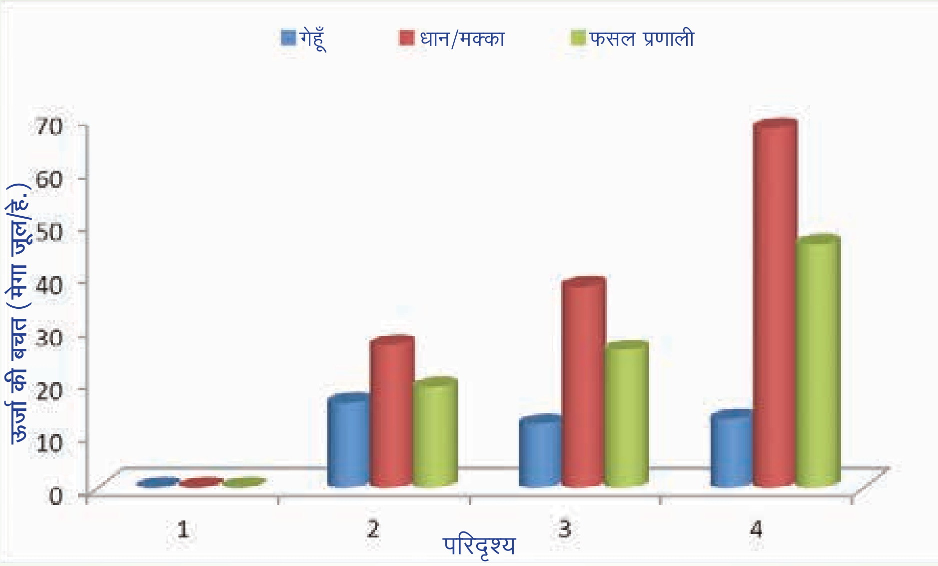

लेखाचित्र 4: तीन वर्षो के औसत आधार पर विभिन्न परिदृश्यों में ऊर्जा की बचत

(ङ) मृदा में कार्बन एवं भौतिक गुणों पर प्रभाव

संरक्षण खेती में मृदा कार्बन की मात्रा में आशातीत वृद्धि दर्ज की गयी। प्रारम्भिक विश्लेषण के अनुसार मृदा में कार्बन की मात्रा 0.45 प्रतिशत थी। जो 3 वर्षों बाद भी परिदृश्य 1 में ज्यों की त्यों बनी रही (0.46 प्रतिशत)। जबकि परिदृश्य 2, 3 एवं 4 में कार्बन की मात्रा में लगभग 15, 25 एवं 30 प्रतिशत तक की बढ़ोत्तरी पायी गई। परिदृश्य 2, 3 एवं 4 में मृदा के भौतिक गुणों जैसेः मृदा संरचना, जल धारण क्षमता, मृदा भार घनत्व, मृदा एकत्रीकरण, मृदा पारगम्यता दर आदि में परिदृश्य 1की तुलनां में सुधार देखा गया। परिदृश्य 3 एवं 4 में मृदा भार घनत्व में बढ़ोत्तरी पायी गयी। वहीं दूसरी ओर मृदा पारगम्यता दर (*इनफिल्ट्रेशन रेट*) परिदृश्य 3 एवं 4 में परिदृश्य 1 एवं 2 की तुलना में दोगुनी (लगभग 0.30 सेंटीमिटर प्रतिदिन) दर्ज की गयी। परिदृश्य 3 एवं 4 में मृदा समुच्चय (*एग्रिगेशन*) के आकार (0.25 मिलीमिटर से ज्यादा) में 3 साल बाद लगभग 30–35 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी पायी गयी तथा लगभग 100–150 प्रतिशत की वृदि मध्यम भार व्यास में पायी गयी। परिदृश्य 2, 3 एवं 4 में जल धारण क्षमता परिदृश्य 1 की तुलना में अधिक होती है।

(च) सारांश

परिणामों से स्पष्ट होता है कि कृषि संरक्षण पर आधारित कृषि के बेहतर फसल प्रबंधनों एवं संसाधनों (श्रम, पानी, जुताई तथा फसल स्थापना लागत) के इस्तेमाल से उपज, जल और ऊर्जा के प्रयोग पर सकारात्मक प्रभाव देखे गये हैं। सिंचाई जल तथा ऊर्जा खपत का कम उपयोग करते हुये परिदृश्य 2, 3 और 4 में धान समतुल्य प्रणाली उत्पादकता, परिदृश्य 1 की तुलना में अधिक दर्ज की गई। पानी एवं मानव श्रम की बढ़ती कमी और सिंचाई की बढ़ती लागत से निपटने के लिए आने वाले समय में धान की सीधी बुआई एक संभावित विकल्प है। भूमि के घटते जलस्तर को रोकने, फसल विविधिकरण को बढ़ावा देने एवं खाद्य सुरक्षा को हासिल करने के लिए मक्का एक अच्छा विकल्प है। कृषि संरक्षण पर आधारित सर्वश्रेष्ठ प्रबंधन के अभ्यासों का मृदा के स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव दिखाई पडता है जो दीर्घकालिक स्थिरता के स्थायित्व के लिए महत्वपूर्ण है।

10. संरक्षण खेती के लिए महत्वपूर्ण प्रबंधन तकनीकियाँ

(क) भूमि का लेजर समतलीकरण (*लेजर लैंड लेवलिंग*)

समान रूप से पानी का वितरण सुनिश्चित करने के लिए खेत को सावधानी पूर्वक समतल करना आवश्यक है जिससे पानी की गहराई खेत में एक समान बनी रहे। समतल खेत में जल इकठ्ठा नहीं हो पाता तथा उसकी निकासी भी आसानी से हो जाती है। समतलीकरण द्वारा पादप पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग एवं उच्च जल उपयोगी क्षमता सुनिश्चित होती है। समतलीकरण के उद्देश्य को पूरा करने हेतु नवविकसित तकनीक लेजर लैण्ड लेवलर का प्रयोग अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है।

संसाधन संरक्षण तकनीकियों से फसलों में उच्चतम् परिणाम तभी आते हैं जब किसान आवश्यकतानुसार (*प्रीसीजन*) लेजर भूमि समतलीकरण के बाद खेती करता है। सतही सिंचाई क्षेत्रों में यह आवश्यक है कि सतह उपयुक्त रुप से समतल हो व उसमें उचित ढ़लान हो ताकि सिंचाई प्रक्रिया सुचारु हो। सतही सिंचित क्षेत्रों के समतलीकरण के लिए लेजर निर्देशित उपकरणों का उपयोग आर्थिक रुप से संभव हो गया है। इन सुविधाओं का किराये पर उपलब्ध होने की वजह से इनका प्रयोग छोटे किसान भी कर सकते है। लेजर भूमि समतलीकरण से क्षेत्र की असमानता 20 मिलीमीटर तक कम हो जाती है। परिणामतः सिंचित क्षेत्र में 2 प्रतिशत व फसल क्षेत्र में 3–4 प्रतिशत तक वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त जल प्रयोग व वितरण की दक्षता में 35 प्रतिशत तक सुधार होता है। सिंचाई जल उत्पादकता, उर्वरक उपयोग दक्षता एवं फसल पकाव में सुधार होता है व खरपतवार दबाव कम होता है। विभिन्न क्षेत्रों में इस तकनीकी का प्रसारण तेजी से हो रहा है जो इस तकनीक की स्वीकार्यता एवं वैधता को दर्शाता है।

लेजर लैंड लेवलर द्वारा भूमि का समतलीकरण

(ख) बिना जुताई तथा फसल अवशेषों में बुवाई के लिए मशीनें

संरक्षण खेती करने के लिए ऐसी मशीनों की जरुरत होती है जो मृदा सतह पर फसल अवशेषों की उपस्थिति के बावजूद बुआई करने में कामयाब हों। फसल अवशेषों में अच्छी तरह से बुआई करने के लिए विभिन्न जीरो–टिल मशीनों का उपयोग किया जाता है। जीरो–टिल मशीनों के बिना संरक्षण खेती के बारे में सोचना बेमानी है।

फसल अवशेषों में बुआई के लिए टर्बो–सीडर, रोटरी डिस्क ड्रिल एवं डबल डिस्क कोल्टर

टर्बो–सीडर, पी. सी. आर. प्लान्टर एवं रोटरी डिस्क ड्रिल 8–10 टन/हैक्टेयर की दर से उपस्थित खडे (एंकर्ड) एवं बिखरे (लूज) फसल अवशेषों वाले खेत में सही ढंग से बुआई करने के लिए उपयुक्त है। खेत में फसल अवशेषों की मात्रा यदि 3–4 टन प्रति हैक्टेयर हो तो डबल डिस्क कोल्टर का प्रयोग किया जाता है। इन मशीनों में अलग–अलग फसलों की बुआई करने के लिए अलग–अलग झुकी/उर्ध्वाधर (इन्कलाईंड) प्लेटों का उपयोग किया जाता है जिससे दो कतारों के बीच की दूरी एवं पौधे से पौधे के बीच की दूरी को नियंत्रित किया जा सकता है। फसल अवशेषों को जलाने से रोकने व इसके वातावरण व भूमि पर होने वाले कुप्रभावों से बचने के लिये जीरो–टिल पद्धति को नीतिगत स्तर पर ले जाना चाहिए।

(ग) बैड प्लान्टिंग

भूमि रुपान्तरण में परिवर्तन के रुप में बैड प्लान्टिंग को सिंचित पारीस्थितिकी में संसाधन संरक्षण तकनीक के रुप में प्रयोग किया जा रहा है। बैड प्लान्टिंग का अर्थ है वह प्लान्टिंग सिस्टम जिसमें फसल को बैड्स पर लगााया जाता है व सिंचाई कूड़ों में दी जाती है। सिमिट ने एक स्थाई फरो सिंचित रेज्ड बैड प्लान्टिंग तकनीक विकसित की है। फरो सिंचित रेज्ड बैड प्लान्टिंग तकनीक ने किसानों में पकड हासिल की है क्योंकि यह 25–40 प्रतिशत जल, 25 प्रतिशत पोषक तत्व व 20–30 प्रतिशत बीज बचाती है। इसके अतिरिक्त खरपतवार नियंत्रण अधिक होता है, फसल का गिरना, कीटों एवं खरपतवारों का संक्रमण समतल प्लान्टिंग की तुलना में कम होता है। इन सबके अतिरिक्त यह प्लान्टिंग विधि जड़ वातावरण में बदलाव लाती है और जड़ क्षेत्र में वायु संचार को सुधारती है। संरक्षण खेती में इन बैड्स को स्थायी बैड्स में बदल दिया गया है ओर जुताई के कार्यक्रम को एकल कार्य तक सीमित कर दिया है, जिसमें बुवाई, सफाई व फरो को रिशेपिंग एक साथ ही करते है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में बैड प्लान्टिंग में फसल लगाने पर फसलों की उपज में वृद्धि होती है जबकि सिंचित क्षेत्रों में उपज लगभग बराबर होती है।

फ्रेश बैड एवं परमानेंट बैड पर लगायी गयी गेहूँ की फसल

(घ) धान की सीधी बुवाई में खरपतवार नियंत्रण

धान की परंपरागत खेती में मुख्य रूप से खरपतवार की वृद्धि को कम करने के लिए लगभग 5 से 7 सेंटीमीटर की गहराई का सिंचाई जल भराव किया जाता है। धान की सीधी बुवाई पद्धति के द्वारा बीजों को सीधे खेतों में बोया जाता है जिस कारण खरपतवारों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। धान की सीधी बुवाई वाले खेतों में खरपतवारों की संख्या, सघनता एवं विविधता पारंपरिक प्रतिरोपित (कद्दू) धान से काफी अलग होती है अतः उनके नियंत्रण पर विशेष ध्यान देने की जरुरत है। यह अंतर मृदा में नमी के स्तर में अंतर के कारण पाया जाता है। घास की किस्म जैसे सांवक (*इकाइनोक्लोआ क्रुसगल्ली*), छोटा सांवक (*इकाइनोक्लोआ कोलोनम*), मकड़ा (*ड़कटाईलोक्टिनियम अजिपसियम*), मुटमुर (*इराग्रोस्टिस जेपोनिका*), भोयली (*लेप्टोक्लोआ चाइनेसिस*), बनसा (*पैनिकम* प्रजाती) तथा मोथा/ड़िल्ला (*साइप्रस* प्रजाती) आदि सीधी बुवाई वाले क्षेत्रों में मुख्य रूप से पायी जाती है जबकि पारंपरिक प्रतिरोपित धान में मुख्य रूप से सांवक, छोटा सांवक एवं मोथा का अधिक प्रभुत्व होता हैं।

नागरमोथा (*साइप्रस ड़िफोरमिस*)

डिल्ला (*साइप्रस इरिया*)

सांवक *(इकाइनोक्लोआ क्रुसगल्ली)*

छोटा सांवक *(इकाइनोक्लोआ कोलोनम)*

मकड़ा *(ड़कटाईलोक्टिनियम अजिपसियम)*

भोयली *(लेप्टोक्लोआ चाइनेसिस)*

केना *(एकलिप्टा एल्बा)*

कोडा *(पास्पेलम डिस्टीकम)*

थुजकर *(सैजुलिया क्जिलारिस)*

गंठजोड *(अमनिया ग्रसिलिस),*

धान की फसल में होने वाले मुख्य खरपतवार

सीधी बुवाई वाले धान में शस्य क्रियाओं तथा रासायनिक विधियों के समन्वय से खरपतवारों का परभावी ढ़ंग से नियन्त्रण किया जा सकता है जोकि इस प्रकार हैः–

(क) स्टेल बीजशैया तकनीक

इस तकनीक का प्रयोग धान की सीधी बुवाई वाले क्षेत्रों में खरपतवार को कम करने के लिए किया जाता है। इस विधि में धान की बुवाई के एक महीने पहले एक या दो सिंचाई देकर खरपतवार के बीजों को उगने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और उसके बाद गैर चयनात्मक शाकनांशी राउंडअप या ग्लायसेल (41 प्रतिशत *गलाइफॉसेट*) 15–20 मिलीमीटर प्रति लीटर पानी या मेरा–71 (71 प्रतिशत *गलाइफॉसेट*) 6–10 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव बुवाई के 5–7 दिन पहले करके मार दिया जाता है। इस विधि से पिछले सत्र के स्वयंसेवक धान (*वोल्यूंटर राइस*) एवं जंगली धान को भी नियंत्रित किया जा सकता है।

(ख) जमीन की सतह पर फसल अवशेष रखकर (*मल्चिंग*)

जमीन की सतह पर फसल अवशेष छोड़नें से उगने वाले खरपतवारों को भौतिक बाधा उत्पन्न होती है। जीरो–टिलेज विधि (फसल अवशेषों के साथ) खरपतवारों के बीजों को खाने वाले परभक्षियों की मात्रा को बढ़ावा देती है जोकि खरपतवार के बीज भंड़ार को कम करनें में सहायक होते हैं। धान के फसल अवशेष गेहूँ की फसल में मंडुसी (*फेलेरिस माइनर*) के अंकुरण एवं वृद्धि को रोकते हैं।

विभिन्न परिदृश्यों में मल्चिंग (फसल अवशेष) का फेलेरिस माइनर पर प्रभाव

(ग) रासायनिक नियन्त्रण

बुआई पूर्व (जीरो–टिलेज विधि से धान की सीधी बुवाई वाली स्थिति में) :– खेत में उपलब्ध बहुवर्षीय खरपतवारों को नष्ट करने के लिए बुवाई से पहले हल्की सिंचाई करने से शेष खरपतवार के बीजों का अंकुरण भी हो जाता है तथा पुरानें खरपतवारों की वृद्धि शुरु हो जाती है। इन खरपतवारों को नष्ट करने के लिए गैर चयनात्मक शाकनाशीयों का प्रयोग बुवाई से 8–10 दिन पहले करना चाहिए। जीरो–टिलेज तकनीकी से धान कि सीधी बुवाई वाली स्थिति में जमें हुये खरपतवारों को नष्ट करने के लिए राउंडअप या ग्लायसेल (41 प्रतिशत *गलाइफॉसेट*) 15–20 मिलीमीटर प्रति लीटर पानी या मेरा–71 (71 प्रतिशत *गलाइफॉसेट*) 6–10 ग्राम प्रति लीटर पानी में प्रयोग करें।

फसल बुआई के बाद व अंकुरण से पहले शाकनाशीयों का प्रयोगः– धान के खेत में उगने वाले सभी प्रकार (घास एवं चौडी पत्ती वाले खरपतवार) के खरपतवारों को नष्ट करने के लिए बुआई से लेकर 3 दिन के भीतर स्टोंप (*पैन्डिमीथेलीन* 30 प्रतिशत) 3300 मिलीलीटर प्रति हैक्टेयर (1.0 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर) या स्टोंप एक्सट्रा (*पैन्डिमीथेलीन* 38.70 प्रतिशत) 2580 मिलीलीटर प्रति हैक्टेयर (1.0 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर) अथवा टोप स्टार (*आग्जाड़ाइरजिल* 80 प्रतिशत ड़ब्ल्यू. पी.) 112.5 ग्राम प्रति हैक्टेयर (90 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर) की दर से छिडकाव करें।

अंकुरण के बाद शाकनाशीयों का प्रयोगः– सभी प्रकार की घासों, चौडी पत्ती वाले खरपतवारों एवं मोथे को नष्ट करने के लिए बुवाई के 15–25 दिन के भीतर नोमिनिगोल्ड या अड़ोरा (*बिसपाइरिबेक*) की 250 मिलीलीटर प्रति हैक्टेयर (25 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर) को 300–375 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें। फिनोक्साप्रोप की 60 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई के 15–21 दिन के भीतर छिड़काव करना लेप्टोक्लोआ, घासों, चौडी पत्ती वाले खरपतवारों एवं मोथे के नियन्त्रण में प्रभावकारी पाया गया है। पेनोक्सुलाम का बुवाई के 15 दिन बाद 300–375 लीटर पानी में घोलकर (20 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर) छिड़काव करने से सभी खरपतवारों को नियन्त्रित कर सकते हैं। फसल पर शाकनाशीयों को छिड़कने की दर फसल की अवस्था, खरपतवार घनत्व, मृदा आद्रता, स्प्रे नोजल एवं उपस्थित मौसम आदि पर निर्भर करता है। शाकनाशीयों का प्रयोग खरपतवारों के प्रकार एवं उनकी संख्या तथा फसल की शाकनाशी के साथ चयनात्मकता के आधार पर किया जाता है (तालिका 3)।

शाकनाशीयों को मिलाकर छिडकने से खेत में उगे हुऐ सभी प्रकार के मिश्रित खरपतवारों (घासें, चौड़ी पत्ती खरपतवार एवं मोथे) का नियन्त्रण आसानी से किया जा सकता है। बिसपाइरिबेक संग अजीमसलफुरॉन का 250 मिलिलीटर. + 250 ग्राम प्रति हैक्टेयर (25 एवं 17.5 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर) की दर से 300–375 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 15–20 दिन बाद छिड़काव करने से घासों एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के अलावा मोथा पूरी तरह नियन्त्रित हो जाता है। फिनोक्साप्रोप का इथोक्सिसलफुरॉन के साथ छिड़काव करने पर भी घासों, चौडी पत्ती वाले खरपतवारों एवं मोथे का नियन्त्रण किया जा सकता है। शाकनाशीयों के प्रयोग करते समय खेत में प्रर्याप्त नमी होना आवश्यक है।

तालिका 3 : धान की सीधी बुवाई में खरपतवारों को नियन्त्रित करने वाले शाकनाशी

शाकनाशी	व्यवसायिक नाम*	मात्रा (मिलि./ ग्राम प्रति है.)	छिड़काव का समय	खरपतवारों पर प्रभाव/नियन्त्रण
बिसपाइरिबेक	नोमिनिगोल्ड या अड़ोरा	250 मिलि. प्रति हैक्टेयर (25 ग्राम सक्रिय तत्व)	बुवाई के 15–25 दिन बाद	एक वर्षीय मोथे, घासों एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का अच्छा नियन्त्रण
पेनोक्सुलाम	ग्रेनाइट	93.75 मिलि. प्रति हैक्टेयर (22.5 ग्राम सक्रिय तत्व)	बुवाई के 15–20 दिन बाद	व्यापक विस्तार (*ब्रोड़ स्पेक्ट्रम*) वाली घासों एवं चौड़ी पत्ती वाले तथा एक वर्षीय मोथे का अच्छा नियन्त्रण
फिनोक्साप्रोप इथाईल + सेफनर	राइस स्टार	870–1300 मिलि. प्रति हैक्टेयर (60–90 ग्राम सक्रिय तत्व)	बुवाई के 15–20 दिन बाद	एक वर्षीय खरपतवारों पर अच्छा नियन्त्रण
अजीमसलफुरॉन	सेगमेंट	35–70 ग्राम प्रति हैक्टेयर (17.5–35 ग्राम सक्रिय तत्व)	बुवाई के 15–20 दिन बाद	व्यापक विस्तार वाली घासों एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों एवं मोथे का अच्छा नियन्त्रण
इथोक्सिसलफुरॉन	सनराइज	120 मिलि. प्रति हैक्टेयर (18 ग्राम सक्रिय तत्व)	बुवाई के 15–20 दिन बाद	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों एवं मोथे पर प्रभावी
कारफेन्ट्राजोन	एफिनिटी	20 मिलि. प्रति हैक्टेयर (50 ग्राम सक्रिय तत्व)	बुवाई के 15–20 दिन बाद	केवल चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर प्रभावी
2,4–ड़ी, ईथाइल ईस्टर	वीड़मार	1250 मिलि. प्रति हैक्टेयर (500 ग्राम सक्रिय तत्व)	बुवाई के 15–25 दिन बाद	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों एवं एक वर्षीय मोथे पर अच्छा प्रभावी
बिसपाइरिबेक + अजीमसलफुरॉन	–	250 मिलि. + 35 ग्राम प्रति हैक्टेयर (25+17.5 ग्राम सक्रिय तत्व)	बुवाई के 15–20 दिन बाद	व्यापक विस्तार वाली घासों एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों एवं मोथे का अच्छा नियन्त्रण
बिसपाइरिबेक + पाइरेजोसलफुरॉन	–	250 मिलि. + 250 ग्राम प्रति हैक्टेयर (25+25 ग्राम सक्रिय तत्व)	बुवाई के 15–20 दिन बाद	व्यापक विस्तार वाली घासों एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों एवं मोथे का अच्छा नियन्त्रण
फिनोक्साप्रोप + इथोक्सिसलफुरॉन	–	645 मिलि. + 120 ग्राम प्रति हैक्टेयर (60+18 ग्राम सक्रिय तत्व)	बुवाई के 15–25 दिन बाद	घासों एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों एवं मोथे का अच्छा नियन्त्रण, भोयली एवं मकड़े पर प्रभावी

*उपरोक्त संकेत किसी कम्पनी विशेष उत्पाद की रिफारिश नही करते।

(ङ) फसल विविधिकरण एवं टिकाऊ फसल प्रणालियां

धान–गेहूँ फसल चक्र में मूंग को शामिल करके फसल प्रणाली उत्पादकता के साथ–साथ भूमि की उर्वरा शक्ति एवं खरपतवार नियंत्रण दक्षता को भी बढ़ाया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर धान के स्थान पर मक्का को लगाने से घटते भू–जलस्तर, एवं मजदूरों की कमी जैसी समस्याओं से निजात पायी जा सकती है। धान–गेहूँ की स्थापन विधि में बदलाव करके धान में कद्दू करके रोपाई करने की बजाय धान की सीधी बिजाई एक लाभकारी विकल्प हो सकता है। धान आधारित फसल चक्र को अधिक लाभकारी बनाने के लिये कम अवधि के धान के बाद आलू व मक्का या सूरजमुखी को शामिल किया जा सकता है। सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली

गन्ने की फसल के साथ अन्तःवर्तीय गेहूँ एवं धनियां की फसल

का अन्य फसलों के साथ सघनीकरण करने से पारम्परिक धान–गेहूँ फसल चक्र की अपेक्षा अधिक उत्पादकता व शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है। गन्नें की फसल को अक्तूबर माह में अन्तःवर्तीय फसलों (गेहूँ, सरसों, प्याज, लहसुन, धनियां व अन्य दलहनी व तिलहनी फसलें इत्यादि) के साथ सफलातपर्वूक उगाया जा सकता है। ऐसा करने से गन्नें के उत्पादन के अलावा अंतःवर्तीय फसलों से अतिरिक्त आय भी प्राप्त हो जाती है। अतः गन्नें के साथ अंतःवर्तीय फसलें उगाकर दोहरा लाभ प्राप्त करके गन्ना आधारित फसल चक्रों को अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है।

11. खाद्य सुरक्षा के लिए भविष्य की योजना–क्लाईमेट स्मार्ट खेती

प्राकृतिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन के कारण जलवायु में लगातार परिवर्तन हो रहा है जो एक चिंता का विषय बना हुआ है। संरक्षण खेती की तकनीकियों को अपनाते हुये हमें ऐसी खेती की आवश्यकता होगी जो समय के साथ चलते हुये सभी प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग करते हुये टिकाऊ उत्पादन देने में सक्षम हो। ऐसे समय में हमारे सामने क्लाईमेट स्मार्ट खेती का नाम उभरकर सामने आता है। इस विषय पर अध्ययनरत् वैज्ञानिकों का मानना है कि मानवीय गतिविधियों के कारण जलवायु परिवर्तन की वर्तमान दर पिछले 10,000 साल के किसी भी समय की तुलना में तेजी से हुई है। मानवीय गतिविधियों की वजह से उत्सर्जन के नए स्रोतों ने वृद्धि एवं जंगलों के आकार को भी निरंतर प्रभावित किया है। हरित–गृह (*ग्रीन हाउस*) गैसों के उत्सर्जन में मानव जनित

क्रियाओं द्वारा वर्ष 1970 से 2004 के बीच 70 प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई है और अनुमान है कि 25 से 95 प्रतिशत तक की वृद्धि वर्ष 2030 तक हो सकती है। जलवायु परितर्वन पर अंतर सरकारी पैनल (आईपीसीसी) ने अपनी चौथी आंकलन रिपोर्ट में कहा है कि जलवायु परिवर्तन 1990 के बाद तेजी से बढ़ा है इसके लिए मानवीय गतिविधियों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है जिसका पारिस्थितिकी प्रणालियों पर प्रभाव पड़ेगा। जीवाश्म ईंधन के दोहन और कृषि पद्धतियों से 20वीं सदी के दौरान वैश्विक तापमान में औसतन वृद्धि क्रमशः 0.6 डिग्री सैल्सियस एवं 0.17 डिग्री सेल्सियस हुयी है।

कृषि फसलें उगाने से वायुमण्डलीय कार्बन का स्थिरीकरण किया जाता है जो मिट्टी में कार्बन को भंडारण करने की क्षमता पर निर्भर करता है। इस प्रक्रिया को कार्बन भंडारण के रूप में जाना जाता है। भूमि कृषि प्रबंधन प्रथाओं के आधार पर कार्बन डाईऑक्साइड के लिए एक भंडार कक्ष हो सकता है जिसको संरक्षित खेती के तरीके से पूर्ण किया जा सकता है। संरक्षित खेती के तरीकों को अपनाकर हम हरित–गृह गैस उत्सर्जन कम करने के अलावा पानी, मिट्टी और हवा की गुणवत्ता को भी बढ़ा सकते है। जलवायु परितर्वन के विपरीत प्रभाव को कम करने के लिए संरक्षित खेती आधारित क्रियाएं एक समाधान का हिस्सा हो सकती है। इसके लिए सीजीआईएआर के

मौसम एवं उपलब्ध संसाधनों के साथ क्लाईमेट स्मार्ट खेती

जलवायु परिवर्तन कृषि एवं खाद्य सुरक्षा (CCAFS) तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के जलवायु अनुरूप कृषि पर राष्ट्रीय पहल (NICRA) अनुसंधान कार्यक्रम के तहत् भारत में क्लाईमेट स्मार्ट गाँव बनाने पर कार्य किया जा रहा है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के लिए जल स्मार्ट, न्यूट्रिएंट स्मार्ट, कार्बन स्मार्ट, उर्जा स्मार्ट, मौसम स्मार्ट एवं ज्ञान स्मार्ट आदि तकनीकियों पर कार्य किया जा रहा है। भारत देश का हरियाणा राज्य क्लाईमेट स्मार्ट खेती परियोजना पर शोध कार्य करने में अग्रणी स्थान रखता है तथा इसके तहत करनाल जिले के अन्दर कई गाँवों में इस पर कार्य किया जा रहा है तथा भविष्य में इनके अच्छे एवं दूरगामी परिणाम आने की संभावना है जो हमें एक नयी राह दिखायेंगे।

जल स्मार्ट तकनीक के तहत धान की सीधी बिजाई, मक्का आधारित फसल चक्र, बैड प्लान्टिगं, जरूरत के अनुसार भूमि का समतलीकरण, धान में वैकल्पिक जल प्रबंधन, जीरो–टिलेज व सूक्ष्म सिंचाई आदि तकनीकियां अपनायी जाती है। न्यूट्रिएंट स्मार्ट में प्रक्षेत्र विशेष पादप पोषक तत्व प्रबंधन, मक्का और गेहूँ के लिए न्यूट्रिएंट एक्सपर्ट, ग्रीन सीकर व फसल चक्र में दलहनों का समन्वय आदि तकनीकियां को अपनाया जाता है। कार्बन स्मार्ट के अन्तर्गत

जीरो–टिलेज एवं फसल अवशेष प्रबंधन को बढावा दिया जाता है। ऊर्जा स्मार्ट में भी जीरो–टिलेज, फसल अवशेष प्रबंधन तथा धान की सीधी बिजाई को अपनाया जाता है। मौसम स्मार्ट तकनीक में मौसम का पूर्वानुमान, सूचकांक आधारित बीमा, जरूरतों के अनुसार बीज, फसल विविधिकरण व कृषि वानिकी को लागू करने पर बल दिया जा रहा है। ज्ञान स्मार्ट में सूचना एवं प्रसारण तकनीकियां, महिला सशक्तिकरण व क्षमता विकास मुख्य तकनीकियाँ हैं। इन सभी तकनीकियों के उपयोग से बदलते वातावरण में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ खाद्य सुरक्षा के लिए भी गाँवों को सक्षम बनाया जा रहा है।

12. महत्वपूर्ण सिफारिशें

(1) सिंधु–गंगा के मैदानी इलाकों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली में धान को जीरो–टिल मक्का से प्रतिस्थापित कर श्रम और पानी की बढ़ती कमी की समस्या से निपटा जा सकता है।

(2) खेत की तैयारी करके प्रतिरोपित धान की जगह धान की सीधी बुवाई (*डी.एस.आर*) भविष्य के लिए एक बेहतर विकल्प है।

(3) टर्बो–हैप्पी सीडर की मदद से फसल अवशेषों में लगाये गये जीरो–टिल गेहूँ का फसल उत्पादकता पर अच्छा एवं सकारात्मक प्रभाव आता है।

(4) जीरो–टिल टर्बो हैप्पी सीडर तकनीक न केवल फसल उत्पादकता बढ़ाती है बल्कि किसानों को फसल अवशेषों को जलाने से रोकने एवं धान अवशेष प्रबंधन के समाधान एवं पर्यावरण मैत्रिता का एक अच्छा विकल्प प्रदान करती है।

(5) धान–गेहूँ फसल प्रणाली में मूंग को शामिल करने से भूमि स्वास्थय, उत्पादकता के साथ–साथ उर्वरा शाक्ति को बरकरार रखने व प्रभावी खरपतवार नियंत्रण करनें में मदद मिलती है।

(6) मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणो में सुधार आना टिकाऊ उत्पादन के लिए एक अच्छा संकेत है।

संरक्षण खेती प्रणाली अपनाकर हमें मृदा क्षरण, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण इत्यादि हानिकारक कुप्रभावों से निजात मिल सकती है।

Control

Design-n-Print
093541 01541